BAMT-201

ताल शास्त्र

बी0ए0 संगीत(तबला) – द्वितीय वर्ष

संगीत विभाग – मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMT-201

ताल शास्त्र

बी0ए0 संगीत(तबला) – द्वितीय वर्ष

संगीत विभाग – मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी – 263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in** वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 गोविन्द सिंह
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 सत्यभान शर्मा
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
दयालबाग विश्वविद्यालय,
दयालबाग

श्री सतीश श्रीवास्तव
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0जी0 कालेज, कानपुर

डॉ0 गीता जोशी
प्रधानाध्यापिका,
महिला महाविद्यालय,
सतीकुण्ड, हरिद्वार

डॉ0 विजय कृष्ण(आ.स.)
पूर्व वरि0 अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व वरि0 अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	डॉ0 मनीष डंगवाल	प्रथम खण्ड़ – इकाई 1
2.	डॉ0 विजय कृष्ण	प्रथम खण्ड़ – इकाई 2 व 3
		द्वितीय खण्ड़ – इकाई 1 व 2
		तृतीय खण्ड़ – इकाई 2 व 3
3.	डॉ0 रेखा शाह	द्वितीय खण्ड़ – इकाई 3
4.	डॉ0 शोभा कुदेशिया	तृतीय खण्ड़ – इकाई 1

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2013, पुनर्प्रकाशन–जुलाई 2016
प्रकाशक : निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल –263139
ई–मेल : **books@uou.ac.in**

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

बी0ए0 संगीत(तबला) – द्वितीय वर्ष
ताल शास्त्र – बी0ए0एम0टी0–201

खण्ड 1 – भारतीय संगीत का इतिहास, शब्दावली व तबले के घराने

इकाई 1 – भारतीय संगीत का इतिहास(प्राचीनकाल से मध्यकाल तक)। **पृष्ठ 1–21**

इकाई 2 – लय, लयकारी, परन, गत, चक्करदार, नौहक्का की परिभाषा उदाहरण सहित। **पृष्ठ 22–29**

इकाई 3 – देहली, अजराडा, लखनऊ, बनारस, पंजाब व फर्रूखाबाद घरानों का विस्तृत अध्ययन। **पृष्ठ 30–49**

खण्ड 2 – ताल के प्राण, जीवन परिचय एवं निबन्ध लेखन

इकाई 1 – ताल के दस प्राण(काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति व प्रस्तार) का संक्षिप्त अध्ययन। **पृष्ठ 50–64**

इकाई 2 – संगीतज्ञों(पं0 अयोध्या प्रसाद, उ0 हबीबुद्दीन खां, पं0 स्वपन चौधरी, पं0 कण्ठे महाराज, उ0 मसीत खां, उ0 जाकिर हुसैन व पं0 गामा महाराज) का जीवन परिचय। **पृष्ठ 65–72**

इकाई 3 – संगीत सम्बन्धी विषयों पर निबन्ध। **पृष्ठ 73–80**

खण्ड 3 – तालिपि पद्धति एवं तालिपि में लिखना

इकाई 1 – दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का परिचय एवं उत्तर भारतीय ताल पद्धति से तुलना।**पृष्ठ 81–92**

इकाई 2 – पाठ्यक्रम की तालों का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों के ठेके, लयकारी(दुगुन, तिगुन एवं चौगुन) सहित लिपिबद्ध करना। **पृष्ठ 93–101**

इकाई 3 – तबले की रचनाओं(पाठ्यक्रमानुसार) को लिपिबद्ध करना। **पृष्ठ 102–119**

इकाई 1 – भारतीय संगीत का इतिहास (प्राचीनकाल से मध्यकाल तक)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय संगीत का इतिहास
1.3.1 प्रागऐतिहासिक काल
1.3.2 ऐतिहासिक काल
1.4 भारतीय संगीत के तत्व
1.4.1 गीत शैलियाँ
1.4.2 सांगीतिक तत्व
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0टी0–201) के प्रथम खण्ड की पहली इकाई है। आप अभी तक भारतीय शास्त्रीय संगीत के मूलभूत तत्वों से परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई का अध्ययन भारतीय संगीत के इतिहास क्रम के प्राचीन व मध्यकाल में हुए सांगीतिक विकास का ज्ञान कराता है। इस इकाई में प्राचीन व मध्य काल में रचे गए प्रमुख छः सांगीतिक ग्रन्थों– नारद मुनि कृत नारदीय शिक्षा, भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र, मतंग मुनि कृत बृहद्देशी, पं0 शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर, पं0 अहोबल कृत संगीत पारिजात तथा रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि में वर्णित मुख्य सांगीतिक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई के अध्ययन से आपको उत्तर व दक्षिण भारतीय संगीत में प्रचलित कुछ प्रमुख गायन शैलियों का भी ज्ञान प्राप्त होगा। इस इकाई में भारतीय संगीत में प्रचलित कुछ विशिष्ट तत्वों तथा शब्दों की व्याख्या भी प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के इतिहास(प्राचीनकाल से मध्यकाल तक) को भली–भांति जान पाएंगे तथा प्राचीन से लेकर मध्यकाल तक के संगीत के प्रचारकों के बारे में भी जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- भारतीय संगीत के विकास क्रम तथा आधुनिक संगीत के तत्वों को समझ सकेंगे।
- जान सकेंगे कि प्राचीन काल में किस प्रकार व कब से भारतीय संगीत में स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, ग्रामराग, व जाति का समावेश होता चला गया।
- जान सकेंगे कि भारतीय संगीत के कौन–कौन से महत्वपूर्ण ग्रंथ प्राचीन व मध्यकाल में रचे गए व उनमें किन–किन विषयों का वर्णन किया गया है। इन्हीं ग्रंथों से प्राचीन व मध्यकालीन अनेक संगीतज्ञों के नाम भी ज्ञात होते हैं जिनके भारतीय संगीत में योगदान के विषय में हमें पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं है। अर्थात् उनके ग्रंथ आदि आधुनिक काल में प्राप्त नहीं हैं।
- वर्तमान भारतीय संगीत के विभिन्न तत्वों के विषय में भी जान सकेंगे।

1.3 भारतीय संगीत का इतिहास

किसी क्षेत्र विशेष का इतिहास वहां के निवासियों की राजनैतिक विचारधारा, आर्थिकी, पर्यावरण तथा संस्कृति का द्योतक होता है। भारतीय संगीत, भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग व पहचान है। आधुनिक कालीन विद्वानों द्वारा भारतीय संगीत के ऐतिहासिक क्रम को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है – प्राग्ऐतिहासिक काल तथा ऐतिहासिक काल।

प्राग्ऐतिहासिक काल के अन्तर्गत भारतीय संगीत के इतिहास का वह भाग समाहित है जिसमें वेद साहित्य, वेदांग साहित्य, पुराण, रामायण व महाभारत महाकाव्य तथा बौद्ध व जैन धर्म ग्रंथ रचे गए। इन ग्रंथों में भारतीय संगीत के उद्गम व विकास क्रम के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों में पौराणिक युग के अनेक सांगीतिक विद्वानों, विभिन्न सांगीतिक तत्वों नृत्य, गीत विधाओं, वाद्यों आदि का वर्णन प्राप्त होता है। भारतीय संगीत के इतिहास का यह प्रथम काल खण्ड माना जाता है। इस काल खण्ड को वैदिक युग अथवा पौराणिक युग भी कहा जाता है। इस युग में रचे गए ग्रंथों का सही–सही समय निर्धारण नहीं हो पाया है। इस युग में भारतीय चिन्तन, बौद्धिक विचारधारा, सभ्यता एवं संस्कृति को व्यक्त करने वाले अनेक ग्रंथ रचे गए जैसे–वेद, उपनिषद, शिक्षा ग्रंथ, ब्राह्मण ग्रंथ, रामायण, महाभारत, 18 महापुराण, बौद्ध व जैन धर्म साहित्य आदि।

इतिहासकारों के अनुसार जिस काल खण्ड की तिथि निर्धारित की जा चुकी है। वह काल खण्ड ऐतिहासिक काल कहलाता है। प्राचीन भारतीय संगीत के ग्रंथों में उनकी लेखन तिथियां प्राप्त नहीं होती। इस दृष्टिकोण से आधुनिक इतिहासकारों व संगीतकारों को संगीत के ग्रंथों की लेखन तिथियां निर्धारित करने के लिए उन ग्रंथों में दिए गए नामोल्लेखों, आख्यानों आदि अनेक प्रकार के तथ्यों पर आश्रित रहना पड़ता है। इस प्रकार निर्धारित की गई तिथियां अनुमानित तिथियां ही होती हैं। इस आधार पर भारतीय संगीत के तत्वों को व्यक्त करने वाला प्रथम ग्रंथ नारदीय शिक्षा है, जिसका रचना काल निर्धारित किया जा चुका है। भारतीय संगीत के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक काल को तीन खण्डों में वर्गीकृत किया जाता है – प्राचीन काल(8वीं शताब्दी ई0पू0 से 12वीं शताब्दी ई0 तक), मध्य काल(13वीं शताब्दी ई0 से 18वीं शताब्दी ई0 तक) तथा आधुनिक काल(19वीं शताब्दी से वर्तमान काल)। इस इकाई में प्राग्ऐतिहासिक काल तथा ऐतिहासिक काल के प्राचीन व मध्य काल में रचे गए सांगीतिक ग्रंथों व तत्कालीन सांगीतिक परम्पराओं का अध्ययन प्रस्तुत है।

1.3.1 प्राग्ऐतिहासिक काल – इकाई के इस खण्ड में हम सामवेद, रामायण व महाभारत महाकाव्य ग्रंथों के संगीत से सम्बन्धित विवरणों का अध्ययन करेंगे। जहां सामवेद में भारतीय संगीत के आरम्भिक लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वहीं रामायण व महाभारत कालीन समाज में संगीत धर्मी कलाकारों व संगीत के प्रति सम्मान दिखता है। इन ग्रंथों के अध्ययन से भारतीय संगीत के विकास क्रम व उसके प्रति तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण का पता चलता है। इस खण्ड में आप इन ग्रंथों में तथा इनके रचना काल में सांगीतिक विकास व दशा का अध्ययन करेंगे।

वैदिक काल (सामवेद) – भारतीय संगीत का उद्गम सामवेद से ही माना जाता है। भारतीय वाङ्मय के चतुर्वेदों में से सामवेद गेय वेद है। सामवेद में संकलित ऋचाओं को गाया जा सकता है। यह प्रथम ग्रंथ है जिसमें भारतीय संगीत का आदिम रूप दृष्टिगोचर होता है। सामवेद ग्रंथ के दो खण्ड हैं–पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। सामवेद के प्रथम खण्ड पूर्वार्चिक में जिन ऋचाओं का संकलन है वे तृस्वर युक्त हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्वार्चिक में संकलित ऋचाओं का गायन तीन स्वरों में किया जाता है। जबकि उत्तरार्चिक में संकलित ऋचाओं का गायन सात स्वर युक्त होता है। इसी तथ्य से हमें ज्ञात हो जाता है कि वैदिक काल में ही संगीत में सात स्वर प्रयुक्त होने लगे थे। सामवेद में दो प्रकार के सांगीतिक स्वरों का उल्लेख प्राप्त होता है–वैदिक स्वर तथा लौकिक स्वर। वैदिक स्वरों का प्रयोग वैदिक संगीत अर्थात् साम संगीत में ही किया जाता था। लौकिक स्वरों का प्रयोग सामान्य जन द्वारा लौकिक समारोहों में आयोजित किए जाने वाले सांगीतिक सम्मेलनों में जन मनोरंजन के लिए किया जाता था। सामवेद में लौकिक संगीत के स्वरों की संज्ञाएं भी प्राप्त होती हैं–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद। सामवेद प्रथम ग्रंथ है

जिसमें संगीत के लौकिक स्वरों के नाम प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त सामवेद की ऋचाओं का गायन करने के दो प्रमुख अंग रहे हैं – सामगान व सामविकार।

सामवेद की ऋचाओं के गायन को साम–गान कहा जाता है। सामगान करने वाले विद्वान ऋषि–ऋत्विज कहलाते थे, जिन्हें यज्ञ की आवश्यकता अनुसार यजमान द्वारा नियुक्त किया जाता था। इनकी संख्या तीन रहती थी जिन्हें प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहर्ता कहा जाता है। इनके अतिरिक्त तीन से छः तक उपगाताओं का भी सामगान के अंतर्गत चयन किया जाता रहा है जिनका कार्य ऋत्विजों के स्वर से चार स्वर नीचे के स्वर का निरंतर गान करना था जिससे सामगान में निरंतरता बनी रहे। प्राचीन काल में साम गान दो प्रकार से किया जाता रहा है – पंचविध सामगान तथा सप्तविध सामगान। पंचविध साम के अंतर्गत सामगान के पांच खण्ड करके गाने की प्रथा रही है जबकि सप्तविध सामगान के अंतर्गत साम गान के सात खण्ड करके गाने की प्रथा रही है। इन दो प्रकार के साम को ही क्रमशः पंचभक्ति साम तथा सप्तभक्ति साम भी कहा जाता है। पंचविध साम के पांच खण्ड – प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव एवं निधन हैं जबकि सप्तविध साम के सात खण्ड – हिंकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव एवं निधन हैं।

ऋग्वेद की कुछ चुनी हुई ऋचाओं तथा कुछ अन्य ऋचाओं का संकलन सामवेद में किया गया है तथा सामवेद में संकलित इन ऋचाओं का गायन किया जाता है, जो सामगान कहलाता है। ऋग्वेद में ऋचाओं का संकलन पाठ्य भेद से हुआ है। इसलिए ऋग्वेद की ऋचाओं को गेयत्व प्रदान करने के लिए उनमें कुछ परिवर्तन करने पड़ते हैं ताकि सामगान के अंतर्गत उनका गायन सहज, सरल तथा तारतम्यता पूर्ण ढंग से किया जा सके। इन परिवर्तनों को साम विकार कहा जाता है। सामविकार मुख्यतः छः प्रकार के हैं – विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम तथा स्तोभ।

विकार – मूल ऋचा में गेयत्व की सुगमता के लिए कुछ परिवर्तन करना, विकार कहलाता है। जैसे *मोर* शब्द को *मोरवा* या *मुरवा* या *मोरला* या *मुरला* गाना।

विश्लेषण – गेयत्व की सुगमता के लिए किसी पद या अक्षर का पृथकीकरण कर गान करना, विश्लेषण कहलाता है। जैसे बंदिश की प्रथम पंक्ति के अंतिम शब्द *का रे जाने ना दूंगी ए री माई* पंक्ति में *माई* शब्द को तोड़कर *मा* का गायन कर पुनः सम्पूर्ण पंक्ति का गायन करना।

विकर्षण – किसी लघु पद को दीर्घ या दीर्घ पद को लघु बना कर गायन करना, विकर्षण कहलाता है। जैसे *पिया* को *पियाऽऽऽऽ* या *दिना* को *दीना* या *मोरला* को *मुरला* गाना।

अभ्यास – किसी पद को बारम्बार दोहराना, अभ्यास कहलाता है। जैसे *साजन मोरे घर आए* को *साजन मोरे घर आए आए* गाना।

विराम – किसी पद को गाते हुए कुछ विराम कर आगे के पद का गायन करना, विराम कहलाता है। उदाहरण स्वरूप – *अरि ए री आली पिया बिन* गाने के बाद कुछ विराम कर(जरा सा) *सखि कल ना परत मोहे*..... गाना।

स्तोभ – मूल ऋचा में मात्रा पूर्ण करने व लय की आवश्यकता अनुसार जिन अतिरिक्त वर्णों, अक्षरों या पदों का प्रयोग किया जाता है, वे स्तोभ या स्तोभाक्षर कहलाते हैं। जैसे–हुम्, हाउ, औहोवा आदि। संगीत रत्नाकर में 13 स्तोभ बताए गए हैं।

महाकाव्य काल (रामायण व महाभारत) – भारतीय ऐतिहासिक क्रम में वैदिक काल के पश्चात् महाकाव्य काल माना गया है। इस काल में भारतीय इतिहास, राजनैतिक विकास व संस्कृति के द्योतक दो महान ग्रंथ रचे गए – रामायण तथा महाभारत। ये दोनों ग्रंथ विशाल काव्य ग्रंथ हैं इसलिए इनके रचना काल को विद्वतजन महाकाव्य काल भी कहते हैं।

महाकाव्य रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि द्वारा की गई। स्वयं महर्षि वाल्मीकि का कथन है कि रामायण एक गेय ग्रंथ है अर्थात् यह ग्रंथ आदि से अंत तक गाया जा सकता है। इसलिए संगीत के दृष्टिकोण से यह ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में रामायण कालीन समाज में प्रचलित सांगीतिक परम्पराओं के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। रामायण में ऐसे अनेक वर्णन हैं जिससे ज्ञात होता है कि

तत्कालीन समाज में संगीत व सांगीतिक कलाकारों के प्रति विशेष श्रद्धा तथा सम्मान की भावना रही है। वेदों के रचना काल के समान ही रामायण काल में भी संगीत की दो धाराएं – साम संगीत व लोक मनोरंजन की सांगीतिक धारा प्रचलित थी। तत्कालीन सम्भ्रांत व सामान्य वर्ग में संगीत शिक्षा अनिवार्य थी। शासन द्वारा सार्वजनिक स्थानों पर सांगीतिक शिक्षण केंद्र तथा सांगीतिक रंगशालाएं बनवाई गई थी। सांगीतिक समारोह तथा नाट्य रंगकर्म ही तत्कालीन समाज के मुख्य मनोरंजन के साधन थे। संगीत कर्मियों को राजाश्रय प्राप्त था। संगीत के विद्यार्थियों को भी शासन द्वारा विशेष सुविधाएं व राजाश्रय प्राप्त था। रामायण के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन संगीत मुख्यतया ग्राम व मूर्च्छना पर आधारित था परंतु तत्कालीन संगीत में ग्रामरागों के प्रचार के संकेत भी प्राप्त होते हैं।

वाद्यों के अंतर्गत रामायण काल में तंतु वाद्यों में वीणा, सुषिर वाद्यों में वेणु तथा ताल वाद्यों में पुष्कर वाद्यों को विशेष महत्व दिया गया है। वीणा तथा पुष्कर वाद्यों के अनेक प्रकार प्रचलित थे। तत्कालीन वीणाओं में मत्तकोकिला, विपंची व महती वीणा विशेष उल्लेखनीय हैं। रामायण में वर्णित सांगीतिक कलाकारों में अप्सराओं, गंधर्वों, नागरों व मागधों का विशेष स्थान रहा है। इनके अतिरिक्त रावण, मन्दोदरी, हनुमान, राम व लव–कुश को रामायण में श्रेष्ठ संगीतज्ञों की श्रेणी में रखा गया है। राजकुल के सदस्यों का संगीत प्रेमी व संगीतज्ञ होना यह दर्शाता है कि रामायण कालीन समाज में संगीत को श्रेष्ठ कला के रूप में मान्यता प्राप्त थी व संगीत को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

महाभारत ग्रंथ महर्षि व्यास द्वारा रचा तथा भगवान गणेश द्वारा लिखा गया है। महर्षि व्यास द्वारा इस ग्रंथ को जयग्रंथ कहा गया है परंतु कालांतर में जयग्रंथ को ही महाभारत कहा जाने लगा। रामायण के समान ही महाभारत भी एक महाकाव्य ग्रंथ है। काव्य की यह विशेषता होती है कि उसमें पद्यात्मक शैली के साथ ही लय भी विद्यमान होती है। यदि उसमें सांगीतिक स्वरों का भी समावेश कर लिया जाए तो वही काव्य रचना गीत बन जाती है। इसलिए महाभारत ग्रंथ को भी गेय महाकाव्य माना जा सकता है। इस ग्रंथ का ही एक अंश– *श्रीमद्भगवद् गीता*, भगवान श्रीकृष्ण द्वारा गाया गया गीत ही है। रामायण काल के समान ही महाभारत काल में भी संगीत व सांगीतिक कलाकारों के प्रति विशेष श्रद्धा तथा सम्मान की धारणा रही है। तत्कालीन समाज में संगीत शिक्षा अनिवार्य थी। शासन द्वारा विभिन्न सार्वजनिक स्थानों पर सांगीतिक शिक्षण केंद्र तथा सांगीतिक रंगशालाएं बनवाई गई थीं। रामायण काल के समान ही महाभारत काल में भी सांगीतिक समारोह तथा नाट्य रंगकर्म ही तत्कालीन समाज के मुख्य मनोरंजन के साधन थे। संगीत कर्मियों और संगीत के विद्यार्थियों को शासन द्वारा विशेष सुविधाएं तथा राजाश्रय प्राप्त था। महाभारत में संगीत के महत्व का भान इसी तथ्य से हो जाता है कि पहले अर्जुन ने स्वर्ग में संगीत शिक्षा प्राप्त की तथा बाद में बृहन्लला रूप में विराट राज की पुत्री उत्तरा व अन्य राजकन्याओं को विराट राज के अनुग्रह पर संगीत शिक्षा प्रदान की। स्वयं श्रीकृष्ण उत्कृष्ट वंशी वादक तथा नर्तक थे। महाभारत के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि उस काल में गान्धार ग्राम प्रचलित था। यह इस युग की विशेषता रही है। यद्यपि इस काल में ग्राम तथा मूर्च्छना पद्धति ही प्रचलित रही परंतु महाभारत में कुछ प्रसंगों में ग्रामरागों के प्रचार के संकेत भी प्राप्त होते हैं। सामजिक उत्सवों में पुरुषों व स्त्रियों की सामूहिक नृत्य, गीत, वाद्य वादन प्रस्तुतियां इस युग की विशेषता थी।

वाद्यों के अंतर्गत शंख, वेणु, वीणा के विभिन्न प्रकार, पुष्कर वाद्य के अनेक प्रकार, दुंदुभि के अनेक प्रकार आदि अनेक वाद्य प्रकार प्रचलित थे। संगीत के दृष्टिकोण से महाभारत युग अत्यंत उत्कृष्ट व उन्नत युग कहा जा सकता है।

1.3.2 ऐतिहासिक काल – इकाई के इस खण्ड में प्राचीन काल के तीन अतिमहत्वपूर्ण ग्रंथों–नारद मुनि कृत नारदीय शिक्षा, भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र व मतंग मुनि कृत बृहद्देशी तथा मध्य काल के तीन ग्रंथों–पं0 शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर, पं0 अहोबल कृत संगीत पारिजात व रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि में वर्णित संगीत पर चर्चा की गई है। ये सभी ग्रंथ भिन्न–भिन्न काल खण्डों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहां नारदीय शिक्षा ईसा पूर्व की शताब्दियों में रचा गया है वहीं नाट्यशास्त्र ईसा की आरम्भिक शताब्दियों का प्रतिनिधि ग्रंथ है। वहीं बृहद्देशी प्राचीन कालीन सांगीतिक परम्पराओं से मध्य

कालीन सांगीतिक परम्पराओं की ओर प्रवृत्ति का सूचक ग्रंथ है। संगीत रत्नाकर स्वयं में एक पूर्ण संगीत–शास्त्र है। यह ग्रंथ भारतीय सांगीतक इतिहास के मध्य काल के सूत्रपात को दर्शाता है। वहीं यह अंतिम ग्रंथ है जिसमें सम्पूर्ण भारत में संगीत की एक ही धारा के प्रवाहित होने के संकेत प्राप्त होते हैं। इस ग्रंथ के पश्चात् जितने सांगीतिक ग्रंथ रचे गए वे या तो उत्तर भारतीय संगीत से सम्बन्धित हैं या दक्षिण भारतीय संगीत से। संगीत पारिजात उत्तर भारतीय संगीत की व्याख्या करने वाला प्रथम ग्रंथ माना जाता है। वहीं स्वरमेलकलानिधि दक्षिण भारतीय संगीत के सिद्धांतों को व्यक्त करने वाला प्रथम ग्रंथ माना जाता है। इस इकाई में इन सभी ग्रंथों के अध्ययन से भारतीय संगीत के विकास क्रम का इतिहास जानने का प्रयास करेंगे।

प्राचीन काल(8 शता0 ई0पू0 से 12वीं शता0 ई0 तक) :–

नारद मुनि कृत नारदीय शिक्षा – नारदीय शिक्षा ग्रंथ की रचना नारद मुनि ने की है। इस ग्रंथ का रचना काल 8वी शताब्दी ई0पू0 से 5वी शताब्दी ई0पू0 के मध्य माना गया है। यह ग्रंथ आधुनिक काल में ज्ञात संगीत विषयक प्रथम ग्रंथ है। यह ग्रंथ मूल रूप से दो खण्डों में विभक्त है जिन्हें प्रपाठक कहा गया है तथा प्रत्येक प्रपाठक में आठ–आठ अध्याय हैं जिन्हें कण्डिका कहा गया है। इस ग्रंथ का प्रथम प्रपाठक साम संगीत तथा द्वितीय प्रपाठक लौकिक संगीत को समर्पित है। इस ग्रंथ में सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में संगीत के तत्वों का उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ में नारद मुनि ने वैदिक स्वरों के नाम इस प्रकार बताए हैं–कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र व अतिस्वार। इस ग्रंथ में वैदिक तथा लौकिक स्वरों की तुलना भी प्राप्त होती है। नारद मुनि के अनुसार वैदिक स्वर कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र व अतिस्वार ही वेणु पर स्थित क्रमशः पंचम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, धैवत व निषाद स्वर हैं। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक सप्तक वक्र तथा अवरोही क्रम में था। इस ग्रंथ में सांगीतिक सप्त स्वरों के देवता, वर्ण, जाति, उत्पत्ति स्थान, ऋषि, जीवों से उत्पत्ति आदि के वर्णन भी प्राप्त होते हैं। इस ग्रंथ में श्रुति–जाति, स्वरमण्डल, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाओं, आचार्य व विद्यार्थी के गुणावगुण आदि का भी वर्णन किया गया है। नारदीय शिक्षा में वर्णित नारद के मतों का उल्लेख प्रायः सभी परवर्ती ग्रंथकारों ने अपने–अपने ग्रंथों में किया है।

भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – जैसा कि नाम से ही ज्ञात हो जाता है कि नाट्यशास्त्र मूल रूप से नाट्य पर आधारित ग्रंथ है। यह ग्रंथ भरत मुनि द्वारा रचित ग्रंथ है। कुछ विद्वान इस ग्रंथ में 33 तो कुछ 36 अध्याय मानते हैं। नाट्य में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण इस ग्रंथ के 28 से लेकर 33 तक के अध्यायों में भरत मुनि ने संगीत विषय पर वृहद् चर्चा की है। अतः यह ग्रंथ संगीत के विद्यार्थियों के लिए भी महत्वपूर्ण ग्रंथ है। नाट्यशास्त्र ग्रंथ का रचना काल दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रथम शताब्दी ईसवीय तक बहुमत से माना गया है। पहले यह सामान्य मान्यता थी कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नाट्यशास्त्र संगीत के तत्वों का वर्णन करने वाला प्रथम ग्रंथ है परंतु नवीनतम शोधों से ज्ञात हुआ है कि नारदीय शिक्षा ग्रंथ नाट्यशास्त्र का पूर्ववर्ती ग्रंथ है। नाट्यशास्त्र ग्रंथ नाट्य पर आधारित है परंतु इस ग्रंथ में उन सभी विषयों से सम्बद्ध तत्व प्राप्त हो जाते हैं जिनका सम्बन्ध नाट्य से है। इसी क्रम में इस ग्रंथ में संगीत विषय का भी व्यवहार हुआ है। नाट्यशास्त्र में संगीत के लिए गान्धर्व संज्ञा प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में भरत मुनि ने उतने संगीत का ही उल्लेख किया है जितना नाट्य में प्रयुक्त हो सके, ऐसा स्वयं भरत मुनि का कथन है।

नाट्यशास्त्र ग्रंथ में संगीत के सात स्वरों, बाईस श्रुतियों, दो ग्राम–षड्ज व मध्यम, चौदह मूर्च्छनाओं, सात ग्रामरागों, तीन प्रकार की जातियों, पदाश्रिता गीतियों, ध्रुवा गीतियों, आचार्य व शिष्य के गुणावगुण, गायक के गुणावगुण, आदि अनेक सांगीतिक तत्वों पर विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है। भारतीय संगीत का यह प्रथम ज्ञात ग्रंथ है जिसमें भरत मुनि ने चतुःसारणा विधि की सहायता से एक सप्तक में 22 श्रुतियों की स्थिति सिद्ध की है। इस ग्रंथ के 6 व 7 अध्याय में रस के विषय में भी विस्तृत चर्चा प्राप्त

होती है। नाट्यशास्त्र में आठ रस ही माने गए हैं। भरत मुनि ने शांत रस को रस नहीं माना है। इस ग्रंथ में भरत मुनि ने अनेक पूर्ववर्ती व अपने समकालीन संगीताचार्यों के नामोल्लेख भी किया है जैसे–ब्रह्मा, शिव, सरस्वती, पार्वती, शंकर, तुबरु, कोहल, शार्दूल आदि। यद्यपि यह ग्रंथ मूल रूप से नाट्य पर आधारित है परंतु इस ग्रंथ में सर्वप्रथम संगीत के तत्वों पर विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है इसलिए संगीत के विद्यार्थियों के लिए यह ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

मतंग मुनि कृत बृहद्देशी – बृहद्देशी संगीत पर आधारित महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रंथ की रचना मतंग मुनि द्वारा छठी शताब्दी ईसवी में की गई। इस ग्रंथ में मूल रूप से पांच अध्याय हैं परंतु आधुनिक काल में यह ग्रंथ खण्डित अवस्था में प्राप्त होता है। वर्तमान समय में इस ग्रंथ के ध्वनि, स्वरादि, राग तथा प्रबंध से संबंधित, मात्र तीन अध्याय ही प्राप्त हैं। इस ग्रंथ के ताल तथा वाद्य संगीत से सम्बंधित अध्याय प्राप्त नहीं हैं। माना जाता है कि 14वीं शताब्दी में संगीतराज ग्रंथ के रचयिता महाराणा कुम्भ को बृहद्देशी ग्रंथ का वाद्याध्याय प्राप्त था। ईसवी की आरम्भिक शताब्दियों में रचित सांगीतिक ग्रंथों में भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र के पश्चात् यह एक अतिमहत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में ही सर्वप्रथम अनेक सांगीतिक संज्ञाओं की शब्द व्युत्पत्ति व उनकी व्याख्या प्रस्तुत की गई है जिन्हें आधुनिक काल तक सभी विद्वान यथावत् स्वीकार करते हैं।

मतंग मुनि ने इस ग्रंथ के प्रारम्भ में देशी ध्वनि, उसके लक्षण, उसके भेद आदि का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में वर्णित अन्य प्रमुख विषय हैं–नाद, नादोत्पत्ति, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, तान, मूर्छना–तान, वर्ण, अलंकार, पद–गीति, स्वर–गीतियां, जाति, राग, राग लक्षण, राग भेद, भाषा व प्रबंध। इस ग्रंथ में अनेक प्राचीन संगीत मनीषियों के नाम व उनके सांगीतिक मतों के भी वर्णन प्राप्त होते हैं, जैसे काश्यप, कोहल, दत्तिल, दूर्गशक्ति, नन्दिकेश्वर, नारद, ब्रह्मा, भरत, महेश्वर, याष्टिक, वल्लभ, विश्वावसु, शार्दूल आदि।

इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषताओं में एक, *राग* शब्द का प्रयोग व व्यवहार है। वर्तमान ज्ञात ग्रंथों में यह प्रथम ग्रंथ है जिसमें राग के विवरण, व्याख्या व व्यवहार के उल्लेख प्राप्त होते हैं। राग की यही व्याख्या आधुनिक काल तक इसी प्रकार स्वीकार की गई है। इसके अतिरिक्त भारतीय संगीत का यह एक मात्र ग्रंथ है जिसमें बारह स्वरों की मूर्च्छनाएं भी बताई गई हैं। मतंग मुनि के इस मत को भारतीय संगीत में द्वादश–स्वर मूर्छनावाद कहा जाता है। परंतु यह मत प्रचलित नहीं हो पाया। इस ग्रंथ में सर्वप्रथम षड्ज व मध्यम दोनों ग्रामों के श्रुति–मण्डल, स्वर–मण्डल तथा मूर्च्छना–मण्डल भी दिए गए हैं। इस ग्रंथ में ही सर्वप्रथम सात सांगीतिक स्वरों के गेय रूप–सा, रि, गा, म, प, ध तथा नि भी प्राप्त होते हैं। अतः बृहद्देशी ग्रंथ संगीत के विद्यार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

मध्य काल(13वीं शता0 ई0 से 18वीं श0 ई0 तक) :–

पं0 शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर – संगीत रत्नाकर ग्रंथ की रचना पं0 शार्ङ्गदेव ने 13वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में की। इस ग्रंथ में सात अध्याय हैं–स्वराध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय व नृत्याध्याय। सात अध्यायों के कारण इस ग्रंथ को सप्ताध्यायी भी कहा जाता है। यह संगीत विषयक वृहद् ग्रंथ है। इस ग्रंथ में वर्णित समस्त सांगीतिक सूत्रों को आधुनिक कालीन संगीत में भी यथावत् स्वीकारा गया है। प्रायः समस्त आधुनिक कालीन संगीतज्ञ इस ग्रंथ के उद्धरण प्रस्तुत करते रहते हैं।

इस ग्रंथ में उल्लिखित प्रमुख विषयों में बाईस श्रुतियां, सात शुद्ध व बारह विकृत स्वर, स्वरों की जाति–वर्ण–देवता–ऋषि आदि, ग्राम, मूर्च्छना, तान, प्रस्तार, मेरुखण्ड, स्वर साधारण, जाति साधारण, अलंकार, जातियां व उनके लक्षण व उनके प्रकार, दशाविध राग, 164 राग, राग भेद, पांच स्वराश्रिता गीतियां, काकु, गायक–नायक–वाग्गेयकार के गुण व दोष, अनिबद्ध गान, गान्धर्व–गान, मार्गी–देशी, निबद्ध–अनिबद्ध गान, मार्गी व देशी ताल, 120 ताल, ताल के प्राण, धातु–मातु, चतुर्विध वाद्य, नृत्य–नृत्त

लक्षण व अंग आदि, नवरस व भाव आदि हैं। संगीत रत्नाकर में अनेक प्राचीन संगीताचार्यों के मतों के उद्धरण भी प्राप्त होते हैं।

पं0 अहोबल कृत संगीत पारिजात – संगीत पारिजात उत्तर भारतीय संगीत का एक अतिप्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। आधुनिक विद्वानों के अनुसार इस ग्रंथ का रचना काल सन् 1665 ई0 है। संगीत पारिजात ग्रंथ की रचना पं0 अहोबल ने की है। इस ग्रंथ के महत्व का पता इस तथ्य से भी चलता है कि सन् 1724 ई0 में पं0 दीनानाथ ने इसका फारसी अनुवाद भी किया।

इस ग्रंथ में पं0 अहोबल ने मंगलाचरण में संगीत की परिभाषा दे कर मार्गी और देशी संगीत को पारिभाषित किया है। पं0 अहोबल के अनुसार मानवीय हृदय में स्थित बाईस नाड़ियों से बाईस नाद उत्पन्न होते हैं व उन्हीं से 22 श्रुतियां उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात् संगीत पारिजात में श्रुति की व्याख्या, श्रुतियों के नाम व पांच श्रुति–जातियां(दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु और मध्या) बताई गई हैं। संगीत पारिजात में श्रुति नाम अन्य ग्रंथकारों के समान–तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, आदि ही प्राप्त होते हैं। पं0 अहोबल की 22 श्रुतियों पर सप्त स्वरों की स्थापना भी भरत मुनि के समान ही है। सभी स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थित माने गए हैं।

श्रुति के पश्चात् पं0 अहोबल ने स्वर को पारिभाषित करते हुए कहा है– श्रुति और स्वर में अंतर नहीं है। दोनों ध्वनियां सुनी जा सकती हैं। शास्त्रानुसार उनमें सर्प और उसकी कुंडली के समान ही भेद है। विभिन्न रागों की सभी श्रुतियां स्वर के रूप में प्रयुक्त होती हैं। जो ध्वनि जिस राग में प्रयुक्त होती है, वह उस राग के स्वर बन जाती है। इसके बाद संगीत पारिजात में विकृत स्वरों की व्याख्या दी गई है–जब कोई स्वर एक श्रुति आगे बढ़ता है तो तीव्र स्वर कहलाता है। दो श्रुति बढ़ने पर तीव्रतर, तीन श्रुतियां बढ़ने पर तीव्रतम् व चार श्रुतियां बढ़ने पर अतितीव्रतम् कहलाता है। इसी प्रकार जब कोई स्वर पीछे जाता है तो वह कोमल तथा दो श्रुति पीछे जाने पर पूर्व कहलाता है। पं0 अहोबल द्वारा वर्णित शुद्ध व विकृत स्वर निम्न तालिका से समझे जा सकते हैं–

श्रुति क्रम	श्रुति नाम	अहोबल के स्वर		
		शुद्ध	कोमल	तीव्र
1	तीव्रा			तीव्र निषाद
2	कुमुद्वती			तीव्रतर निषाद
3	मंदा			तीव्रतम् निषाद
4	छन्दोवती	षड्ज		
5	दयावती		पूर्व ऋषभ	
6	श्रंजनी		कोमल ऋषभ	
7	रक्तिका	ऋषभ	पूर्व गान्धार	
8	रौद्री		कोमल गान्धार	तीव्र ऋषभ
9	क्रोधी	गान्धार		तीव्रतर ऋषभ
10	वज्रिका			तीव्र गान्धार
11	प्रसारिणी			तीव्रतर गान्धार
12	प्रीति			तीव्रतम् गान्धार
13	मार्जनी	मध्यम		अतितीव्रतम् गान्धार
14	क्षिति			तीव्र मध्यम
15	रक्ता			तीव्रतर मध्यम
16	संदीपनी			तीव्रतम् मध्यम
17	आलापनी	पंचम		
18	मदन्ती		पूर्व धैवत	
19	रोहिणी		कोमल धैवत	

20	रम्या	धैवत	पूर्व निषाद	
21	उग्रा		कोमल निषाद	तीव्र धैवत
22	क्षोभिणी	निषाद		तीव्रतर धैवत

इस प्रकार पं0 अहोबल ने 7 शुद्ध व 22 विकृत कुल 29 स्वर बताए हैं। परंतु उन्होंने अपने रागों के वर्णन में 7 शुद्ध व 5 विकृत कुल 12 स्वरों का ही प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वरों के वादी आदि भेद, स्वरों की जाति, उनके रंग, देवता, जन्मभूमि के द्वीप, छन्द, स्वरों के द्रष्टा तथा उनका नौ रसों से सम्बन्ध भी बताया है। पं0 अहोबल ने अपने स्वरों की वीणा के तार पर लम्बाई के आधार पर स्थापना भी करके बताई है। इसके पश्चात् उन्होंने दो ग्राम, उनकी मूर्च्छनाओं तथा उनके भेदों का भी संक्षिप्त वर्णन किया है।

राग वर्णन के अन्तर्गत प्रत्येक राग का गायन समय बताना इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। पं0 अहोबल ने कुल 122 रागों का वर्णन अपने ग्रंथ में किया है तथा उन्होंने प्रत्येक राग की मूर्च्छना, स्वर, ग्रह, न्यास, अपन्यास, आरोहावरोह आदि का भी उल्लेख भी किया है। उन्होंने अपने कुछ रागों के थाठ भी बताए हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ में वर्ण–भेद, 68 अलंकार, जाति लक्षण, गमक भेद, मेल, तथा गीति भेदों का भी वर्णन किया है।

रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि – स्वरमेलकलानिधि दक्षिण भारतीय संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह ग्रंथ रामामात्य द्वारा सन् 1550 ई0 में रचा गया। इस ग्रंथ में कुल पांच अध्याय हैं जिन्हें प्रकरण कहा गया है – उपोद्घात प्रकरण, स्वर प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण तथा राग प्रकरण।

उपोद्घात प्रकरण में रामामात्य ने ग्रंथ की विषय–सामग्री के विषय में बताया है। स्वर प्रकरण में गांधर्व–गान, नाद की उत्पत्ति का क्रम, श्रुति, श्रुति पर स्वर स्थापना, तथा शुद्ध–विकृत स्वरों के नाम आदि के विषय में उल्लेख किया है। वीणा प्रकरण में वीणा के तारों पर अपने शुद्ध–विकृत स्वरों की स्थापना का वर्णन किया है। मेल प्रकरण में उन्होंने अपने 20 मेलों का विस्तृत वर्णन किया है तथा इन मेलों से उत्पन्न रागों के नाम भी दिए हैं। अन्तिम राग प्रकरण में 68 रागों का विस्तार से उल्लेख किया है।

रामामात्य ने अन्य मध्यवर्ती ग्रंथकारों के समान श्रुतियों के नाम नहीं बताए। रामामात्य ने 7 शुद्ध के साथ 11 विकृत स्वर माने हैं। यद्यपि रामामात्य ने 11 विकृत स्वर बताए हैं तथापि इनमें से षट्श्रुति ध, षट्श्रुति रे, पंचश्रुति रे तथा पंचश्रुति ध स्वर एक ही स्वर की दो संज्ञाएं मात्र हैं। अतः वास्तव में रामामात्य ने कुल 7 विकृत स्वर ही माने हैं।

	रामामात्य के स्वर	
श्रुति क्रम	**शुद्ध**	**विकृत**
1		कैशिक निषाद / षटश्रुति धैवत
2		काकली निषाद
3		च्युत षड्ज निषाद
4	षड्ज	
5		
6		
7	ऋषभ	
8		
9	गान्धार	पंचश्रुति ऋषभ
10		साधरण गांधार / षट्श्रुति ऋषभ
11		अंतर गांधार
12		च्युत मध्यम गांधार
13	मध्यम	
14		

15		
16		च्युत पंचम मध्यम
17	पंचम	
18		
19		
20	धैवत	
21		
22	निषाद	पंचश्रुति धैवत

रामामात्य ने मेलों के विषय में वैणिकों के दो मतों का भी उल्लेख किया है जिसमें एक मत को मानने वाले 20 मेल मानते हैं परंतु अन्य मत को मानने वाले वैणिक 15 मेलों का समर्थन करते हैं। रामामात्य ने स्वयं अपने सभी 68 राग 20 मेलों के अंतर्गत वर्गीकृत किए हैं। उन्होंने स्वोल्लिखित रागों में से 20 को उत्तम, 15 को मध्यम तथा 33 को अधम राग कहा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ रागों की विस्तृत चर्चा भी की है।

1.4 भारतीय संगीत के तत्व

इस खण्ड के दो भाग हैं – गीत शैलियां व सांगीतिक तत्व। प्रथम खण्ड के अंतर्गत उत्तर व दक्षिण भारतीय संगीत में प्रचलित प्रमुख गीत शैलियों का वर्णन किया गया है तथा द्वितीय खण्ड में भारतीय संगीत शास्त्र में वर्णित अनेक प्रमुख तत्वों को समझाया गया है।

1.4.1 गीत शैलियां :–

ध्रुवपद – ध्रुवपद, आधुनिक उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित गीत शैलियों में प्राचीनतम् गीत शैली है। इस गीत शैली की सृजना किसने की इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इस गीत शैली का विकास प्रबन्ध नामक प्राचीन कालीन गीत शैली से हुआ है। वहीं कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि इस गीत शैली का विकास 15वीं शताब्दी में ग्वालियर राज्य के शासक मानसिंह तोमर ने किया। कुछ विद्वानों का मत है कि इस गीत शैली का विकास 15वीं शताब्दी से पूर्व ही हो चुका था। उनके अनुसार बादशाह अकबर के दरबार में ध्रुवपद गायन के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं।

ध्रुवपद एक धीर–गम्भीर गीत शैली है। इसका गायन विलम्बित लय अथवा ठहरी हुई मध्य लय में किया जाता है। ध्रुवपद गीत शैली की बंदिशें प्रायः संस्कृत, ब्रज, भोजपुरी, अवधी, मैथिल व हिन्दी भाषा व बोलियों में रची गई हैं। इस गीत शैली द्वारा प्रमुख रूप से शांत, भक्ति, श्रृंगार, करुण, वीर व रौद्र रसों व भावों को व्यक्त किया जाता है। इस गीत शैली का गायन चारताल, तीव्र, सूलफाक, रुद्र, ब्रह्म, लक्ष्मी, मत्त, सूल आदि तालों में किया जाता है। ध्रुवपद गायन की संगत पखावज या मृदंग नामक ताल वाद्य से की जाती है। इस गीत शैली में प्रायः चार खण्ड–स्थाई, अंतरा, संचारी व आभोग होते हैं। इसके अंतिम खण्ड आभोग में गीत रचनाकार व उसके आश्रयदाता का नामोल्लेख रहता है। कुछ ध्रुवपद चार से कम खण्डों के भी प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में स्थाई व अंतरा युक्त अनेक ध्रुवपद प्रचलित हैं।

ध्रुवपद का गायन नोम–तोम के आलाप से आरम्भ किया जाता है। यह आलाप बहुत विस्तृत व बिना ताल के किया जाता है। इस आलाप के पश्चात् बंदिश का गायन किया जाता है। बंदिश गायन के अंतर्गत विभिन्न लयकारियों में उपज करते हुए बंदिश का विस्तार करके दिखाया जाता है। इस गीत शैली में बंदिश का विस्तार बोल तानों के माध्यम से भी किया जाता है। इस गीत शैली में नोम–तोम के आलाप व बंदिश की उपज करते हुए विभिन्न प्रकार के गमक जैसे–कण, मींड, खटका, आंदोलन, तिरिप, हुम्फित, कम्पित आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। रागों की शुद्धता का ध्यान ध्रुवपद गायन की विशेषता है। भारतीय संगीत में ध्रुवपद गीत शैली को संपूर्ण गीत शैली माना जाता है जिसके माध्यम से कलाकार संगीत के प्रायः समस्त तत्वों को व अपने पूर्ण कला कौशल को प्रदर्शित करता है। प्राचीन भारत

में अनेक प्रसिद्ध ध्रुवपद गायक रहे हैं–स्वामी हरिदास, बैजू बावरा, तानसेन, गोपाल लाल, चिन्तामणि मिश्र आदि।

धमार – धमार गीत शैली का नाम उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित प्रमुख गीत शैलियों में लिया जाता है। धमार गीत शैली के विषय में मान्यता है कि इस गीत शैली की सृजना ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर की पत्नी रानी गुर्जरी के संगीत गुरु बैजू बावरा ने की है। धमार गीत शैली की विषय वस्तु होली त्यौहार व बसंत ऋतु होते हैं। इस गीत शैली की बंदिशों में होली त्यौहार व बसंत ऋतु का वर्णन रहता है। शास्त्रीय संगीत का होली गीत होने के कारण धमार गीत शैली को पक्की होरी या होली गीत भी कहा जाता है। प्रायः धमार गीत का गायन फागुन व चैत्र मास में बसंत ऋतु के अवसर पर ही किया जाता है।

धमार, ध्रुवपद गीत शैली की तुलना में चंचल गीत शैली है। इसका गायन मध्य लय में किया जाता है। धमार गीत शैली की बंदिशें प्रायः संस्कृत, ब्रज, भोजपुरी, अवधी, मैथिल व हिन्दी भाषा व बोलियों में प्राप्त होती हैं। इस गीत शैली द्वारा प्रमुख रूप से श्रृंगार व हास–परिहास रसों व भावों को व्यक्त किया जाता है। इस गीत शैली का गायन मात्र धमार नामक ताल में ही किया जाता है। धमार गायन की संगत पखावज या मृदंग नामक ताल वाद्य से की जाती है। इस गीत शैली में प्रायः चार खण्ड–स्थाई, अंतरा, संचारी व आभोग होते हैं। कुछ धमार चार से कम खण्डों के भी प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में स्थाई व अंतरा युक्त अनेक धमार प्रचलित हैं।

धमार गायन ध्रुवपद गायन से साम्य रखता है। ध्रुवपद के समान धमार गीत शैली का गायन नोम–तोम के आलाप से आरम्भ किया जाता है। यह आलाप बहुत विस्तृत व बिना ताल के किया जाता है। इस आलाप के पश्चात् बंदिश का गायन किया जाता है। बंदिश गायन के अंतर्गत विभिन्न लयकारियों में उपज करते हुए बंदिश का विस्तार करके दिखाया जाता है। इस गीत शैली में ध्रुवपद के समान ही बंदिश का विस्तार बोल तानों के माध्यम से भी किया जाता है। इस गीत शैली में नोम–तोम के आलाप व बंदिश की उपज करते हुए विभिन्न प्रकार के गमक जैसे–कण, मींड, खटका, आंदोलन, तिरिप, हुम्फित, कम्पित आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। ध्रुवपद गायन के समान धमार गायन में भी रागों की शुद्धता का ध्यान इसकी विशेषता है। प्रायः धमार की बंदिशें बसंत ऋतु कालीन रागों में निबद्ध रहती हैं।

ख्याल – आधुनिक कालीन उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याल गीत शैली सर्वाधिक प्रचलित गीत शैली है। इस गीत शैली की सृजना किसने की इस विषय में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि ख्याल गीत शैली का विकास अमीर खुसरो ने किया। वहीं कुछ विद्वानों का मानना है कि ख्याल गीत शैली का विकास 18वीं शताब्दी में खुसरो खाँ नामक प्रसिद्ध संगीतकार द्वारा किया गया। वहीं कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि ख्याल गीत शैली का विकास ध्रुवपद गीत शैली से हुआ है कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रबंध नामक प्राचीन गीत शैली ही खयाल गीत शैली के विकास का आदिम स्रोत है।

ख्याल का गायन विलम्बित, मध्य तथा द्रुत तीनों लयों में किया जाता है। ख्याल गीत शैली की बंदिशें प्रायः ब्रज, भोजपुरी, अवधी, खड़ी, मैथिल, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी व हिन्दी भाषा व बोलियों में प्राप्त होती हैं। इस गीत शैली द्वारा प्रमुख रूप से शांत, भक्ति, श्रृंगार, करुण, वीर, रौद्र, वियोग, हास–परिहास आदि रसों व भावों को व्यक्त किया जाता है। इस गीत शैली का गायन एकताल, तीनताल, तिलवाड़ा, झूमरा, रूपक, झप, आड़ाचार ताल आदि अनेक तालों में ही किया जाता है। ख्याल गायन की संगत तबला नामक ताल वाद्य से की जाती है। इस गीत शैली में दो खण्ड–स्थाई व अंतरा ही होते हैं तथा गीत रचनाकार व उसके आश्रयदाता का नाम अंतरा नामक खण्ड में उल्लिखित रहता है।

ख्याल का गायन राग सूचक सूक्ष्म आलाप से आरम्भ किया जाता है। यह आलाप विस्तृत नहीं होता परंतु इसके माध्यम से राग का स्वरूप तुरंत प्रस्तुत कर दिया जाता है। इस आलाप के पश्चात् बंदिश का गायन किया जाता है। बंदिश गायन के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के विस्तृत आलाप या बोल आलाप, सरगम, बहलावा, बोल तान व तान के माध्यम से बंदिश का विस्तार करके दिखाया जाता है। ख्याल गायन में रागों की शुद्धता का भी ध्यान रखा जाता है। ख्याल गीत शैली के दो प्रकार भारतीय

संगीत में प्रचलित हैं–बड़ा ख्याल व छोटा ख्याल। विलम्बित लय में गाया जाने वाला ख्याल बड़ा ख्याल तथा मध्य व द्रुत लय में गाया जाने वाला ख्याल छोटा ख्याल कहलाता है। इनके अतिरिक्त ध्रुवपद अंग से झपताल में गाए जाने वाले ख्याल को ख्याल न कह कर, सादरा कहा जाता है।

तराना – यह गीत शैली उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित है। इस गीत शैली के विषय में मान्यता है कि इसकी सृजना अमीर खुसरो ने की थी। तराना की बंदिश में सार्थक शब्दों के स्थान पर ताल वाद्यों के पटाक्षर व तंतु वाद्यों के कोण व मिज़राब के निरर्थक बोल रहते हैं। कुछ प्राचीन तरानों में अरबी–फारसी के कुछ शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। ऐसा माना जाता है कि भारतीय संगीत से प्रभावित होकर अमीर खुसरो ने तत्कालीन भारतीय भाषा–संस्कृत के शब्दों के स्थान पर, इस गीत शैली में निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया। तराना गीत शैली का गायन विलम्बित, मध्य तथा द्रुत तीनों लयों में किया जाता है। इस गीत शैली द्वारा वीर, रौद्र तथा चमत्कार रसों व भावों को व्यक्त किया जाता है। इस गीत शैली का गायन एकताल, तीनताल, तिलवाड़ा, झूमरा, रूपक, झप, आड़ाचार ताल आदि अनेक तालों में ही किया जाता है। तराना गायन की संगत तबला नामक ताल वाद्य से की जाती है। इस गीत शैली में दो खण्ड–स्थाई व अंतरा ही होते हैं। तराने की बंदिश का विस्तार पटाक्षरों का प्रयोग करते हुए लयकारी व तानों के माध्यम से किया जाता है।

ठुमरी – आधुनिक कालीन उत्तर भारतीय संगीत में ठुमरी गीत शैली का बहुत प्रचार है। विद्वानों के अनुसार यह गीत शैली उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत वर्गीकृत की जाती है वहीं कुछ विद्वान इसे शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत वर्गीकृत करने के पक्षधर हैं। इस गीत शैली की सृजना किसने की इस विषय में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि ठुमरी गीत शैली का विकास मियां शौरी ने किया।

ठुमरी का गायन विलम्बित तथा मध्य लयों में किया जाता है। ठुमरी गीत शैली की बंदिशें प्रायः ब्रज, भोजपुरी, अवधी, खड़ी, मैथिल, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी व हिन्दी भाषा व बोलियों में प्राप्त होती हैं। इस गीत शैली द्वारा प्रमुख रूप से श्रृंगार, करुण, हास–परिहास, वियोग, वियोग श्रृंगार, आदि रसों व भावों को व्यक्त किया जाता है। इस गीत शैली का गायन तीनताल, दीपचंदी, जत, कहरवा, पंजाबी, खेमटा आदि तालों में ही किया जाता है। ठुमरी गायन की संगत तबला नामक ताल वाद्य से की जाती है। इस गीत शैली में दो खण्ड–स्थाई व अंतरा ही होते हैं।

ठुमरी का गायन राग सूचक सूक्ष्म आलाप से आरम्भ किया जाता है। इस आलाप के पश्चात् बंदिश का गायन किया जाता है। ठुमरी गायन का विस्तार आलाप या बोल आलाप, सरगम, बोल बनाव, छोटी–छोटी तानों व बोल तानों से किया जाता है। ठुमरी गायन में रागों की शुद्धता पर विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। ठुमरी प्रायः खमाज, काफी, सोरठ, देश, पीलू, तिलंग, आदि जैसे क्षुद्र प्रकृति के रागों में निबद्ध होती है। ठुमरी गीत शैली के दो प्रकार भारतीय संगीत में प्रचलित हैं–पूर्व अंग की ठुमरी व पश्चिम अंग की ठुमरी। पूर्व अंग की ठुमरी उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल में प्रचलित है वहीं पश्चिम अंग की ठुमरी पंजाब व उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में प्रचलित है। पश्चिम अंग की ठुमरी का गायन टप्पा अंग से किया जाता है।

स्वर मालिका – यह गीत शैली उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित है। ऐसा गीत या बंदिश जिसका कवित्त भाग सार्थक शब्दों के स्थान पर राग के स्वरों से बनाया गया हो स्वर मालिका कहलाता है। स्वर मालिका में शब्दों के स्थान पर राग के स्वरों से बंदिश की रचना की जाती है व उन्हीं स्वरों को तालबद्ध कर गाया जाता है। स्वर मालिका की बंदिश का प्रयोग राग व उसके स्वरों के अभ्यास करने के लिए किया जाता है। स्वर मालिका की बंदिश में दो खण्ड ही होते हैं–स्थाई व अंतरा।

लक्षण गीत – यह गीत प्रकार उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित है। लक्षण गीत ऐसे गीत हैं जिनमें राग के लक्षणों का वर्णन रहता है। इन गीत प्रकारों में सार्थक शब्द रचना के साथ ही, जिस राग में लक्षण गीत निबद्ध होते हैं उस राग के आरोहावरोह, वादी–संवादी, थाट, जाति, गायन समय आदि का भी वर्णन रहता है। ये गीत प्रकार अभ्यास हेतु बनाए जाते हैं सामान्यतया इनका प्रदर्शन मंच पर नहीं किया जाता। परंतु इनके अभ्यास से विद्यार्थी को राग के लक्षण सहज ही याद हो जाते हैं। इसकी बंदिश सूक्ष्म होती है व उसमें दो खण्ड–स्थाई व अंतरा ही होते हैं।

पदम् – यह कर्नाटक संगीत शैली की विशद गीत शैली है। यह विलम्बित लय की गीत शैली है व गाम्भीर्य के दृष्टिकोण से हिंदुस्तानी गीत शैली के ध्रुवपद गायन से साम्य रखती है। पदम् में प्रायः तीन खण्ड होते हैं–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम्। परंतु कलाकार अपनी इच्छानुसार पल्लवी या अनुपल्लवी से पदम् का गायन प्रारम्भ कर सकता है। पदम् सभी रसों को व्यक्त करने वाली गीतशैली है। भाव प्रधान होने के कारण पदम् को नृत्य व अभिनय के उपयुक्त माना जाता है। इस गीत शैली में स्वर व शब्द रचना दोनों का संतुलन अपेक्षित होता है। इसमें राग–भाव की अभिव्यक्ति करना एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है।

लगभग 14वीं शताब्दी ई0 तक पद गायन उत्तर भारत में भी प्रचलित था। जयदेव का गीत गोविंद ग्रंथ इसी शैली में रचा गया है। दक्षिण भारत में 15वीं शताब्दी ई0 में पुरंदनदास, कनकदास, जगन्नाथदास आदि ने अनेक पदों की रचना की है। दक्षिण भारत के भक्त–कवि व गायक क्षेत्रज्ञ ने हजारों पदों की रचना की है।

कृति – कर्नाटक संगीत में कृति का वही स्थान है जो हिंदुस्तानी संगीत में ख्याल का है। राग विस्तार की इस प्रौढ़ रचना में स्वर का प्रमुख तथा साहित्य का गौण स्थान रहता है। कृति गायन के लिए संगीत के गूढ़ ज्ञान की आवश्यकता होती है अतः इसका गायन साधारण कलाकार के लिए अत्यंत दुष्कर है। कृति के न्यूनतम तीन खण्ड–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् होते हैं। कृति के अंतर्गत चिट्टैस्वर, राग प्रदर्शक स्वर–संगतियां, स्वर–साहित्य तथा गमक का भी समावेश रहता है। कृति के गायन में इन सभी का क्रमानुसार गायन होता है। उत्तर भारतीय संगीत की गायन शैली ख्याल के समान ही इसमें भी बोल–आलाप एवं बोल–तानें ली जाती हैं, जिन्हें नेरावल कहते हैं। इसका गायन मध्य तथा द्रुत लय में ही किया जाता है। कर्नाटक संगीत में संत त्यागराजा, मुत्थुस्वामी दीक्षितर तथा स्वाति तिरुनल की रचित कृतियां बहुत सम्मान से गाई जाती हैं।

कीर्तनम् – दक्षिण भारतीय संगीत में कीर्तनम् गीत शैली का स्थान सर्वोपरि है। कीर्तनम् भक्ति रस प्रधान गीत शैली है। इस गीत शैली का विकास प्राचीन काल से ही दक्षिण भारत के भक्त कलाकारों द्वारा होता रहा है। इस गीत शैली में तीन मुख्य खण्ड होते हैं–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम्। कीर्तनम् सरल और प्रचलित रागों में निबद्ध होते हैं। उनकी गायन शैली भी सरल और भावमय होती है। कीर्तनम् के प्रथम रचयिता ताल्लपाकम्(14–15वीं षता0 ई0) को माना जाता है। इनके अतिरिक्त दक्षिणी संगीत शैली की त्रिमूर्ति स्वामी त्यागराजा, मुत्थुस्वामी दीक्षितर तथा श्यामा शास्त्री को भी प्रमुख कीर्तनकारों में स्थान प्राप्त है। इनके अतिरिक्त पुरंदरदास, स्वाति तिरुनल, मैसूर सदाशिवय्यर तथा गोपालकृष्ण भारती को भी प्रमुख कीर्तनकारों में स्थान प्राप्त है।

राग मालिका – यह दक्षिण भारत में प्रचलित गीत शैली है। राग मालिका में गीत के विभिन्न खण्डों को भिन्न–भिन्न रागों में गाया जाता है। इस गीत शैली के विभागों में अलग–अलग रागों के नाम व उनकी स्वरावलियां निबद्ध रहती हैं। इस गीत शैली में पल्लवी व अनुपल्लवी नामक दो खण्ड होते हैं। अनुपल्लवी के गायन के पश्चात् रचना में प्रयुक्त रागों में चिट्टैस्वर गाए जाते हैं तथा उनको बहुत कुशलता से पल्लवी के राग में मिलाया जाता है। जिन स्वर समूहों के माध्यम से दो रागों को मिलाया जाता है उन्हें मुकुट–स्वर कहा जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत में पं0 व्यंकटमखि, मत्थुस्वामी दीक्षितर, स्वाति तिरुनल आदि ने अनेक रागमालिकाओं की रचना की है।

तिल्लाना – तिल्लाना गीत शैली उत्तर भारतीय संगीत की तराना गीत शैली से साम्य रखती है। तिल्लाना गीत शैली दक्षिण भारतीय संगीत में प्रचलित चमत्कारिक गीत शैली है। यह द्रुत लय में गाई जाने वाली गीत शैली है। तिल्लाना गीत की बंदिश की रचना व उसका विस्तार मृदंगम् नामक दक्षिण भारतीय ताल वाद्य के बोलों से किया जाता है। इन बोलों को चिट्टैस्वर कहा जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत में स्वाति तिरुनल, मुत्तैया भागवतर आदि के रचित तिल्लाना बहुत प्रसिद्ध हैं।

जावली – इस दक्षिण भारतीय गीत शैली की तुलना उत्तर भारतीय ठुमरी नामक गीत शैली से की जाती है। जवाली शब्द कर्नाटक भाषा के जावल शब्द से उत्पन्न माना गया है जिसका अर्थ है–श्रृंगार। जवाली श्रृंगार रसमय गीत शैली है। इस गीत में एक पल्लवी तथा दो या तीन चरणम् होते हैं। इसके गायन में

राग की शुद्धता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता तथा ठुमरी गीत शैली की ही भांति स्वर–वैचित्र्य का प्रयोग जावली की विशेषता है।

1.4.2 सांगीतिक तत्व :–

जाति – प्राचीन भारतीय संगीत में आधुनिक युग के समान राग गायन का अस्तित्व नहीं था। उस काल के संगीत में जाति गायन का प्रचार था। जाति गायन का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। भरत मुनि ने जाति की परिभाषा नहीं दी है परंतु जाति के 10 लक्षणों का वर्णन किया है :–
ग्रह स्वर – जिस स्वर से जाति गायन प्रारम्भ किया जाता है, वह ग्रह स्वर है।
अंश स्वर – जाति में प्रयुक्त होने वाले सभी स्वरों में से जिस स्वर की प्रधानता रहती है, वह अंश स्वर कहलाता है।
न्यास स्वर – जिस स्वर पर जाति गायन का समापन किया जाता है वह न्यास स्वर कहलाता है।
अपन्यास स्वर – जाति गायन के विभिन्न खण्डों के विश्रांति स्वरों को अपन्यास स्वर कहते हैं।
औडुवत्व – जाति में सात के स्थान पर पांच स्वर ही प्रयोग करने का नियम, औडुवत्व या औडुव कहा जाता है।
षाडवत्व – जाति में सात के स्थान पर छः स्वर ही प्रयोग करने का नियम, षाडवत्व या षाडव कहा जाता है।
अल्पत्व – किसी स्वर का नियमानुसार जाति गायन में अल्प प्रयोग करना, अल्पत्व कहलाता है।
बहुत्व – जाति गायन में किसी स्वर की नियमानुसार बहुलता से प्रयोग की विधि, बहुत्व कहलाती है।
तार – जाति गायन में तार सप्तक की सीमा निर्धारण का स्वर का नियम तारत्व कहा जाता है।
मन्द्र – जाति गायन में मन्द्र सप्तक की सीमा निर्धारण का स्वर का नियम मन्द्रत्व कहा जाता है।

जब ये लक्षण या नियम किसी स्वरावली पर प्रयुक्त किए जाते हैं तो वह गायन शैली, जाति कहलाती है। भरत मुनि ने जातियां दो प्रकार की मानी हैं–शुद्धा व विकृता। परंतु इनके अतिरिक्त उन्होंने दो या अधिक जातियों के मेल से उत्पन्न संसर्गजा विकृता जातियां भी बताई हैं।

ग्राम – सामान्य भाषा में ग्राम से तात्पर्य ऐसे स्थान विशेष से है जहां कुछ मनुष्यों के परिवार किसी निश्चित व्यवस्था के अंतर्गत निवास करते हैं। संगीत में भी इस शब्द का प्रयोग इसी प्रकार हुआ है। जब 22 श्रुतियों रूपी स्थान पर सात स्वर रूपी परिवार क्रमपूर्वक किसी निश्चित व्यवस्था के अंतर्गत स्थित होते हैं तो वह ग्राम कहलाता है। जब श्रुतियों पर स्वरों की स्थिति परिवर्तित की जाती है तब ग्राम भी परिवर्तित हो जाता है। प्राचीन भारतीय संगीत में तीन ग्राम माने गए हैं–षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम व गान्धार ग्राम। जो स्वर इन ग्रामों के नामों को व्यक्त करते हैं वे ही इन तीनों ग्रामों में प्रारम्भिक स्वर हैं। इन तीनों ग्रामों में से गान्धार ग्राम वैदिक काल में ही लुप्त हो गया था। षड्ज व मध्यम ग्रामों की व्याख्या सर्वप्रथम भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र ग्रंथ में प्रस्तुत की है। परवर्ती सभी ग्रंथकारों ने इन दोनों ग्रामों का वर्णन इसी प्रकार किया है।
षड्ज ग्राम – इस ग्राम में प्रथम स्वर षड्ज है। इस ग्राम में षड्ज स्वर की चार श्रुतियां हैं, ऋषभ की तीन, गांधार की दो, मध्यम की चार, पंचम की चार, धैवत की तीन तथा निषाद की दो श्रुतियां हैं। इस आधार पर 22 श्रुतियों में से षड्ज चौथी श्रुति पर स्थित है, ऋषभ सातवीं पर, गांधार नौवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सतरहवीं पर, धैवत बीसवीं पर तथा निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थित है। इस प्रकार षड्ज ग्राम में श्रुति–स्वर विभाजन निम्नवत् है–

4,	3,	2,	4,	4,	3,	2।
सा,	रि,	गा,	म,	प,	ध,	नि।

मध्यम ग्राम – इस ग्राम में प्रथम स्वर मध्यम है। इस ग्राम में मध्यम स्वर की चार श्रुतियां हैं, पंचम की तीन, धैवत की चार, निषाद की दो, षड्ज की चार, ऋषभ की तीन तथा गांधार की दो श्रुतियां हैं। अतः मध्यम ग्राम में श्रुति–स्वर विभाजन निम्नवत् है–

4,	3,	4,	2,	4,	3,	2।
म,	प,	ध,	नि,	सा,	रि,	गा।

मूर्च्छना या मूर्छना – मूर्च्छना शब्द की उत्पत्ति मूर्च्छ् धातु से हुई है जिसका अर्थ है बेसुध होना, मोह होना, भ्रमित होना, ममता, राग, प्रेम, आसक्ति आदि। संगीत में सात स्वरों के क्रमपूर्वक आरोह–अवरोह करने को मूर्च्छना कहते हैं। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में मूर्च्छना को पारिभाषित करते हुए कहा है:–

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्छनेत्यभिसंज्ञिताः।

अर्थात् क्रम युक्त सात स्वरों को मूर्छना कहा जाता है। तात्पर्य यह कि क्रमानुसार सात स्वरों का आरोह–अवरोह करना मूर्छना कहलाता है। ग्राम भी क्रमपूर्वक व्यवस्थित किए गए सात स्वरों का समूह है परंतु ग्राम गाया नहीं जाता। ग्राम के सात स्वरों को एक–एक करके आधार स्वर मानकर आगे के सात स्वरों का आरोह–अवरोह करना ही मूर्छना कहलाता है। मूर्छनाएं अवरोही क्रम में होती हैं। ग्राम से ही मूर्छना बनाई जाती हैं व मूर्छना का ही गान किया जाता था। एक ग्राम के सात स्वरों से सात भिन्न–भिन्न मूर्छनाएं बनती हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय संगीत में प्रचलित रहे दो ग्रामों–षड्ज व मध्यम से कुल चौदह मूर्छनाएं बनाई जाती थीं। भरत मुनि ने दोनों ग्रामों की चौदह मूर्छनाओं के नाम व स्वर निम्नवत् दिए हैं–

षड्ज ग्रामिक मूर्छनाएं

मूर्छना नाम	**मूर्छना के स्वर**
उत्तरमंद्रा	सा रि गा म प ध नि
रजनी	नि सा रि गा म प ध
उत्तरायता	ध नि सा रि गा म प
शुद्ध षड्जा	प ध नि सा रि गा म
मत्सरीकृता	म प ध नि सा रि गा
अश्वक्रांता	गा म प ध नि सा रि
अभिरुद्गता	रि गा म प ध नि सा

मध्यम ग्रामिक मूर्छनाएं

मूर्छना नाम	**मूर्छना के स्वर**
सौवीरी	म प ध नि सा रि गा
हरिणाश्वा	गा म प ध नि सा रि
कलोपनता	रि गा म प ध नि सा
शुद्ध मध्यमा	सा रि गा म प ध नि
मार्गी	नि सा रि गा म प ध
पौरवी	ध नि सा रि गा म प
हृष्यका	प ध नि सा रि गा म

प्राचीन काल में तीन ग्राम प्रचलित रहे इसलिए अनेक ग्रंथों में तीन ग्रामों से इक्कीस मूर्छनाएं मानी गई हैं। परंतु भरत काल में दो ग्राम ही प्रचलित रहे अतः भरत मुनि ने स्वयं दो ही ग्राम व उनकी चौदह मूर्छनाएं ही बताई हैं। भरत मुनि ने मूर्छनाओं के चार भेद माने हैं–शुद्धा, सांतरा, सकाकली तथा साधारणा। परंतु दत्तिल, मतंग मुनि व अन्य अनेक विद्वानों का मत है कि मूर्छनाओं के चार भेद–पूर्णा, सांतरा, सकाकली तथा साधारणीकृता हैं।

राग – राग का शाब्दिक अर्थ है– मोह, प्रेम, आकर्षण, आसक्ति, अनुरक्ति, आनन्द, आदि। संगीत में राग उस विशिष्ट स्वर–समूह को कहा जाता है जिसमें श्रोताओं कों आकर्षित कर उन्हें मंत्रमुग्ध कर देने की क्षमता हो। बृहद्देशी में मतंग मुनि ने राग को पारिभाषित करते हुए कहा हैः–

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः।

अर्थात् ऐसी विशेष ध्वनि जो स्वर व वर्ण से विभूषित हो कर जनसमुदाय के चित्त का रंजन करे वह राग कही गई है। तात्पर्य यह कि संगीत के स्वरों व उन स्वरों के प्रयोग करने की विभिन्न रीतियों(वर्ण) से सजी हुई ध्वनि जिसे सुनकर श्रोता भी मोहित हो जाए राग कहलाती है। आधुनिक काल में विद्वानों ने राग के लक्षणों का भी विवेचन किया है। इन लक्षणों का राग में होना अनिवार्य माना गया हैः–

1. राग गाया जाता है। अतः राग को रंजक होना अनिवार्य है।
2. राग में किसी रस की अभिव्यक्ति की क्षमता होनी चाहिए।
3. राग को किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए।
4. राग में आरोह तथा अवरोह दोनों होना आवश्यक है।
5. राग में कम से कम पांच स्वर होने आवश्यक हैं।
6. राग में षड्ज स्वर को वर्जित नहीं किया जा सकता।
7. राग में मध्यम व पंचम स्वर एक साथ वर्जित नहीं किए जा सकते।
8. राग में वादी–अनुवादी स्वरों का होना आवश्यक है परंतु उनके मध्य तीन या चार स्वरों का अंतर होना चाहिए।
9. राग में वादी–संवादी स्वरों में से एक पूर्वांग में व दूसरा उत्तरांग में होना चाहिए।
10. राग में एक स्वर के दो रूप लगातार प्रयोग नहीं किए जा सकते।

थाट या ठाठ – पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित रागों को सहज रूप से समझने के लिए, उन्हें वर्गीकृत करने का ढंग विकसित किया जिसे थाट या ठाठ पद्धति कहा जाता है। भारतीय संगीत में थाट को ही मेल भी कहा जाता है। थाट या मेल को पारिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है – मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्।

अर्थात् स्वरों के समूह को मेल कहा जाता है जिसमें रागों को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। यद्यपि थाट या मेल स्वरों का समूह मात्र है परंतु पं0 भातखण्डे मेल के कुछ अन्य लक्षण भी बताए हैंः–

1. थाट में सात स्वर होने अनिवार्य हैं।
2. थाट गाया नहीं जाता अतः उसका रंजक होना अनिवार्य नहीं है।
3. थाट में एक स्वर के दो रूप नहीं हो सकते।
4. थाट में आरोह व अवरोह में समान स्वर होने के कारण उसमें आरोह व अवरोह दोनों का होना अनिवार्य नहीं है। अतः थाट में आरोह व अवरोह में से एक होना अनिवार्य है।
5. थाट गाया नहीं जाता परंतु उससे गाए जा सकने वाले राग उत्पन्न किए जा सकें।

पं0 भातखण्डे ने स्वयं इन नियमों पर आधारित दस थाट माने हैं–बिलावल, कल्याण, खमाज, काफी, भैरव, मारवा, पूर्वी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी। पं0 भातखण्डे ने इन थाटों के लक्षण निम्नवत बताए हैंः–

1. बिलावल – सभी स्वर शुद्ध
2. कल्याण – तीव्र मध्यम, शेष स्वर शुद्ध
3. खमाज – कोमल निषाद, शेष स्वर शुद्ध
4. काफी – कोमल गांधार व निषाद, शेष स्वर शुद्ध
5. भैरव – कोमल ऋषभ व धैवत, शेष स्वर शुद्ध
6. मारवा – कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम, शेष स्वर शुद्ध

7. पूर्वी – कोमल ऋषभ व धैवत, तीव्र मध्यम, शेष स्वर शुद्ध
8. आसावरी – कोमल गांधार, धैवत व निषाद, शेष स्वर शुद्ध
9. भैरवी – कोमल ऋषभ, गांधार, धैवत व निषाद, शेष स्वर शुद्ध
10. तोड़ी – कोमल ऋषभ, गांधार व धैवत, तीव्र मध्यम, शेष स्वर शुद्ध

पं0 भातखण्डे ने उत्तर भारतीय संगीत के रागों को उनमें लगने वाले स्वरों के आधार पर इन दस थाटों में वर्गीकृत कर दिया। कुछ राग इन थाटों में वर्गीकृत नहीं किए जा सके इसके लिए पं0 भातखण्डे का मत है कि नवीन पीढ़ी आवश्यकता अनुसार इन थाटों की संख्या बढ़ा सकती है। परंतु स्मरण करने की सुविधा को ध्यान में रख कर स्वयं उन्होंने थाटों की संख्या दस ही स्वीकारी है।

ताल – संगीत स्वर, पद तथा लय के समवेत प्रयोग की कला है। इन तीन तत्वों में से लय समय का सूचक है। संगीत में लय अर्थात् समय को ताल द्वारा नापा व प्रदर्शित किया जाता है। संगीत रतनाकर ग्रंथ में ताल को पारिभाषित करते हुए पं0 शार्ङ्गदेव ने कहा है–

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः।
गीतम् वाद्यं तथा नृत्तं यतस्तालेप्रतिष्ठितम्।।

पं0 शार्ङ्गदेव के अनुसार किसी वस्तु की स्थापना जिस आधार पर होती है वह आधार तल कहलाता है। गीत, वाद्य तथा नृत्त की स्थापना का तल, ताल कहलाता है। जिस प्रकार सामान्य जीवन में समय नापने के लिए क्षण, घड़ी, प्रहर, दिन, सप्ताह, पक्ष, माह, वर्ष आदि का अस्तित्व स्वीकारा गया है उसी प्रकार संगीत में समय को नापने के लिए मात्रा, विभाग व आवर्तन पर आधारित ताल की परिकल्पना की गई है।

पं0 शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर में ताल के 10 प्राण बताए हैं जो ताल के आधारभूत तत्व माने गए हैं। जिस प्रकार प्राणों के बिना शरीर का अस्तित्व नहीं है उसी प्रकार इन 10 प्राणों के बिना ताल का कोई अस्तित्व नहीं है। पं0 शार्ङ्गदेव के अनुसार ताल के 10 प्राण निम्नवत् हैं–

कालोमार्गक्रियांगिग्रहोजातिः कला लया।
यति प्रस्तार कश्चेति ताल प्राणम् दश स्मृतः।।

अर्थात् काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति तथा प्रस्तार ताल के दस प्राण कहे गए हैं।

काल – गायन, वादन या नृत्य के प्रस्तुतीकरण में जितना समय लगता है वह काल कहलाता है। इसे नापने के लिए मात्रा, विभाग व ताल की सृजना होती है।

मार्ग – जिस रीति से ताल पहली मात्रा से अंतिम मात्रा तक चलती है वह मार्ग कहलाती है। इसमें यह ध्यान रखा जाता है कि मात्रा तथा ताल के विभिन्न विभागों का परिमाण कितना है। भरत मुनि ने तीन मार्ग बताए हैं–चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण परंतु पं0 शार्ङ्गदेव ने चार मार्ग माने हैं– ध्रुव, चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण।

क्रिया – ताल, विभाग व मात्रा आदि को प्रदर्शित करने के लिए हाथों से विभिन्न प्रकार के आघात व संकेत, क्रिया कहलाती है। इसके दो भेद बताए गए हैं – सशब्द क्रिया व निःशब्द क्रिया। हाथों द्वारा की जाने वाली जिस क्रिया को प्रकट करने में शब्द अर्थात् ध्वनि उत्पन्न हो वह सशब्द क्रिया कहलाती है तथा जिस क्रिया को प्रकट करने में शब्द अर्थात् ध्वनि उत्पन्न नहीं होती वह निःशब्द क्रिया कहलाती है। पं0 शाङ्र्गदेव ने सशब्द व निःशब्द दोनों क्रियाओं के चार–चार भेद माने हैं। चार सशब्द क्रियाएं–ध्रुव, शम्पा, ताल व सन्निपात हैं। निःशब्द क्रिया के चार भेद– आवाप, निष्क्राम, विक्षेप व प्रवेश हैं।

अंग – ताल के स्वरूप को स्थापित करने के लिए विभाग बनाए जाते हैं, इन्हें ताल के अंग कहा जाता है। इसके छः भेद हैं–अणुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत तथा काकपद।

ग्रह – जिस मात्रा से ताल आरम्भ होती है उसे ग्रह कहते हैं। इसे दो प्रकार से प्रदर्शित किया जाता है–सम ग्रह तथा विषम ग्रह। जब प्रथम मात्रा को निश्चित स्थान पर ही प्रदर्शित किया जाता है तब वह

सम ग्रह कहा जाता है। परंतु जब उसे निश्चित स्थान से इतर प्रदर्शित किया जाता है तब वही विषम ग्रह कहलाता है। विषम ग्रह के दो भेद हैं– अनागत व अतीत ग्रह।

जाति – तालों के विभागों की मात्रा संख्या बदलने से ताल का वजन बदल जाता है जिससे विभिन्न जातियां बनती हैं। पं0 शार्ङ्गदेव ने जाति के पांच भेद बताए हैं–तिस्र, चतस्र, मिश्र, खण्ड व संकीर्ण।

कला – अक्षरकाल का सूक्ष्म विभाजन कला कहलाता है। यदि एक अक्षर काल में एक ही स्वर गाया जाएगा तो उसे एक कला कहा जाएगा, दो स्वर गाए जाएंगे तो दो कला व चार स्वर गाए जाएं तो चार कला कहलाएंगी। एक कला में कितने वर्ण प्रयोग किए जाते हैं इससे ताल की जाति निर्धारित होती है।

लय – दो क्रियाओं के मध्य विश्रांति लय कहलाती है। इसके तीन भेद हैं–विलम्बित लय, मध्य लय तथा द्रुत लय।

यति – लय के नापने का ठंग या रीति यति कहलाती है। इसके पांच भेद हैं–समा, स्रोतोगता, मृदंगा, पिपीलिका तथा गोपुच्छा।

प्रस्तार – विभिन्न टुकड़ों, परन, रेला आदि की सहायता से ताल का विस्तार करना ही प्रस्तार कहा जाता है।

ये ताल के दस प्राण सभी तालों में परिलक्षित होते हैं। भारतीय संगीत में इन दस प्राणों से युक्त अनेकों तालें प्रचलित रही हैं तथा आधुनिक काल में भी ये दस प्राण समस्त तालों में दिखाई देते हैं। उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित कुछ तालों के नाम इस प्रकार हैं–ब्रह्म ताल, लक्ष्मी ताल, रुद्र ताल, विष्णु ताल, एकताल, तीनताल या त्रिताल, चारताल या चौताल, धमार ताल, झपताल, रूपक ताल, तिलवाड़ा ताल, झूमरा ताल, आड़ाचार ताल, दीपचंदी ताल, जत ताल, कहरवा ताल, दादरा ताल, आदि।

वाद्य वर्गीकरण – प्राचीन काल में भरत मुनि ने सांगीतिक वाद्यों को वर्गीकृत करने की रीति का उल्लेख किया है। उन्होंने सांगीतिक वाद्यों को उनके ध्वनि–विज्ञान, प्रयोजन व वाद्यों को बनाने में प्रयुक्त सामग्री के आधार पर चार प्रकार से वर्गीकृत किया है–तत्, वितत्, घन व सुषिर वाद्य।

तत् वाद्य – ऐसे वाद्य जिनमें ध्वनि उत्पादन तंतु अर्थात् तार के माध्यम से होता है वे तत् वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों का प्रयोजन संगीत के स्वरों को उत्पन्न करना है। उदाहरणार्थ–वीणा, सरोद, सितार, तानपूरा, सारंगी, वॉयलिन आदि।

वितत् वाद्य – ऐसे वाद्य जिन्हें बनाने के लिए चर्म या चमड़े का प्रयोग किया जाता है अर्थात् जिनपर चर्म मढ़ा जाता है तथा उसी चर्म पर प्रहार करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है वे वितत् वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों को अवनद्ध वाद्य भी कहा जाता है। इन पर ताल व लय प्रदर्शित की जाती है। उदाहरणार्थ–मृदंग, पखावज, पणव, पुष्करवाद्य, तबला, ढोल, आदि।

घन वाद्य – ऐसे वाद्य जो प्रस्तर(मिट्टी या पत्थर), धातु, या लकड़ी से बनाए जाते हैं व जिन पर मात्र लय प्रदर्शित की जाती है वे घन वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों पर ध्वनि उत्पादन के लिए प्रस्तर(मिट्टी या पत्थर), धातु या लकड़ी की दो सतहों को परस्पर टकराया जाता है परंतु इस प्रकार का ध्वनि उत्पादन स्वर के लिए न हो कर लय मात्र के लिए किया जाता है। उदाहरण स्वरूप–घुंघरू, करताल, घण्टा, झांज, मंजीरा, चिमटा, घड़ियाल, आदि।

सुषिर वाद्य – इन वाद्यों में ध्वनि उत्पादन वायु के माध्यम से किया जाता है। इन वाद्यों में छिद्र होते हैं जिनसे सांगीतिक स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। तत् वाद्यों की भांति ये वाद्य भी स्वरलहरियां उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। इन वाद्यों के उदाहरणों में–शंख, वेणु(बांसुरी), भेरी, शहनाई, नादस्वरम्, मशकबीन, बीन, आदि हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सामगान पर टिप्पणी कीजिए।
2. भारतीय संगीत में ग्राम व उसके भेदों को स्पष्ट करते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. भरत मुनि के वाद्य वर्गीकरण को उदाहरण सहित समझाइए।

4. ताल पर टिप्पणी कीजिए।
5. ध्रुवपद व धमार की तुलना कीजिए।
6. ख्याल व ठुमरी में समानता व विभिन्नता का उल्लेख कीजिए।
7. निम्नलिखित दक्षिण भारतीय संगीत में प्रचलित गीत शैलियों में से किन्हीं दो को समझाइएः–
   पदम्, कृति, कीर्तनम्, जावली, तिल्लाना, राग मालिका
8. निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर टिप्पणी कीजिएः–
   बंदिश, मुखड़ा, वाग्गेयकार, स्वर मालिका, लक्षण गीत, वृन्द, अष्टक, युगलबंदी
9. निम्नलिखित में से किन्हीं छः पर टिप्पणी कीजिए–
   सम, मींड, खटका, मुर्की, आंदोलन, आलाप, संगतकार, गायक, नायक, सप्तक

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के इतिहास (प्राचीनकाल से मध्यकाल तक) के विषय में जान चुके होंगे। प्राग्ऐतिहासिक काल से ही भारतीय संगीत के विकास के प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं। परंतु इस काल खण्ड में साम या सामगान को संगीत का पर्याय माना गया है। इसी काल में भारतीय संगीत में एक से दो, दो से तीन, तीन से चार व इसी क्रम में सात स्वरों तक सप्तक के विकास के प्रमाण वेदों में प्राप्त हो जाते हैं। परंतु वेदों में संगीत के अन्य तत्वों–नाद, श्रुति, सप्तक, ग्राम, मूर्छना आदि का कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता। वेदों के पश्चात् रामायण व महाभारत महाकाव्यों में भी नाद, श्रुति व सप्तक का वर्णन नहीं किया गया है परंतु वहां ग्राम, मूर्छना व ग्रामरागों से सम्बंधित विवरण प्राप्त हो जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज को श्रुति का भान था परंतु रामायण व महाभारत ग्रंथ मानवीय चरित्रों पर आधारित हैं इसलिए इनमें सांगीतिक तत्वों पर विशद् चर्चा नहीं की गई है।

प्राग्ऐतिहासिक काल के ग्रंथों के उल्लेखों से तत्कालीन संगीत विशेषज्ञ विभूतियों के विषय में भी ज्ञात होता है। इस सम्पूर्ण काल खण्ड में गंधर्वों, अप्सराओं तथा किन्नरों के वर्णन प्राप्त होते हैं। ये सभी संगीत जीवी समुदाय के अंग थे। संगीत विद्या को गन्धर्वों की विद्या कहा गया है। इसीलिए प्राग्ऐतिहासिक काल में संगीत को *गान्धर्व* भी कहा गया है। आर्यों के अनेक प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है कि भगवान ब्रह्मा ने संगीत के सप्त स्वरों की सृजना की। कालान्तर में इन्हीं सप्त स्वरों के आधार पर भगवान शिव ने अपने पांच मुखों से पांच रागों की तथा भगवती पार्वती ने एक राग की उत्पत्ति की। इस प्रकार प्रारम्भ में संगीत छः राग उत्पन्न हुए। इस काल के ग्रंथों में वर्णित है कि भगवती सरस्वती तथा नारद मुनि ने भगवान शिव से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् भगवान शिव से आज्ञा प्राप्त कर ऋषि नारद ने संगीत की शिक्षा गन्धर्वों को दी। इन्हीं गन्धर्वों में से एक गंधर्व नारद ने मानव जाति के हित के लिए इस विद्या का प्रचार–प्रसार मत्यु लोक अर्थात् पृथ्वी पर किया। इस प्रकार संगीत के आदि गुरु भगवान शिव माने जाते हैं तथा नारद मृत्यु लोक में संगीत के प्रथम आचार्य माने गए हैं। इसी प्रकार भगवती सरस्वती को संगीत व विद्या की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। प्राचीन भारतीय संगीत के दैवीय संगीतज्ञों में तुम्बरु व विश्वावसु नामक गंधर्वों का नाम भी श्रद्धा से लिया गया है। इनके अतिरिक्त महाकाव्य काल के संगीतज्ञों में रावण, हनुमान, लव–कुश, कृष्ण व अर्जुन का नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्राग्ऐतिहासिक काल के ग्रंथों में अनेक प्रकार के वाद्यों के वर्णन भी प्राप्त होते हैं। इनमें से ताल वाद्यों में आदिम वाद्य भूमि दुंदुभि को माना गया है। ताल वाद्यों में विभिन्न प्रकार के पुष्कर वाद्य, पणव वाद्य तथा विभिन्न प्रकार की दुंदुभियों के वर्णन इस काल के ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। तंतु वाद्यों में बाण नामक वाद्य सर्वाधिक प्राचीन वाद्य है। बाद में प्रचलित हुए सभी प्रकार के तंतु वाद्यों को बाण नामक वाद्य से ही प्रेरित मानकर वीणा कहा गया। प्राग्ऐतिहासिक काल में अनेक प्रकार की वीणाएं प्रचलित थीं, उदाहरणार्थ– एकतंत्री, विपंची, मत्तकोकिला, महती, तुबरु आदि। इस काल में शंख व वेणु वाद्यों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। प्राग्ऐतिहासिक काल के नृत्त प्रकारों में तांडव, लास्य, रास, हल्लीसक आदि प्रमुख रहे हैं। सांगीतिक उद्धरणों के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक काल, प्राग्ऐतिहासिक काल की तुलना में समृद्ध दिखता है। इस काल में स्पष्ट रूप से संगीत पर ही आधारित ग्रंथों की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी। इस काल में

समस्त सांगीतिक तत्वों के उल्लेख व व्याख्या प्राप्त हो जाती है। यह युग संगीत के लिए निर्णायक युग कहा जा सकता है क्योंकि इस युग में सांगीतिक तत्वों की जो व्याख्याएं प्रस्तुत की गईं वही व्याख्याएं आधुनिक काल में भी स्वीकारी गई हैं। यहां तक कि ऐतिहासिक युग के प्राचीन व मध्य काल में भारतीय संगीत का जो विकास हुआ, आधुनिक काल में सूक्ष्म परिवर्तन के साथ ही वह विद्यमान है।

प्राचीन व मध्य काल भारतीय संगीत के दृष्टिकोण से स्वर्णिम युग है। इस युग में जहां पं0 शार्ङ्गदेव, पं0 अहोबल, रामामात्य, पं0 व्यंकटमुखी, पं0 लोचन, पं0 सोमनाथ, महाराण कुम्भा, महाराजा मानसिंह तोमर, आदि जैसे अनेक अति उच्च कोटि के सांगीतिक शास्त्रकार हुए वहीं इसी युग में नायक गोपाल, स्वामी हरिदास, बैजू बावरा, महारानी गुर्जरी, तानसेन, गोपाल लाल, त्यागराजा, स्वाति तिरुनल, श्यामा शास्त्री, सूरदास, मीराबाई, मुत्थुस्वामी दीक्षितर, पुरंदरदास, आदि जैसे अनेक उत्कृष्ट संगीतज्ञ हुए हैं। भारतीय संगीत की प्रसिद्ध गीत शैलियां प्रबन्ध, ध्रुवपद, धमार, ख्याल, चतुरंग, तराना, सादरा आदि भी इसी युग की देन हैं। विश्व प्रसिद्ध भारतीय ताल वाद्य तबला तथा तंतु वाद्य सितार भी तथा विश्व प्रसिद्ध भरतनाट्यम्, कथकली व कथक नृत्य भी इसी युग की देन हैं।

1.6 शब्दावली

1. बंदिश – सांगीतिक भाषा में गीत को बंदिश कहा जाता है। यह सांगीतिक रचना में प्रयुक्त होने वाला कवित्त भाग ही है परंतु यह स्वरमय होता है। संगीत में गीत शैलियों के आधार पर अनेक प्रकार की बंदिशें होती हैं, जैसे– ध्रुवपद, धमार, ख्याल, तराना, ठुमरी, भजन, गज़ल, आदि की बंदिश।

2. सप्तक – सात स्वरों का समूह सप्तक कहलाता है। इस समूह में सात स्वर क्रमपूर्वक नियोजित किए जाते हैं, यथा – सा रे गा म प ध नि। भारतीय संगीत में तीन सप्तक स्वीकार किए गए हैं–तार सप्तक, मध्य सप्तक तथा मन्द्र सप्तक। तार सप्तक मध्य सप्तक से दोगुना ऊंचे स्थान पर स्थित होता है। इसी प्रकार मध्य सप्तक मन्द्र सप्तक से ऊंचे स्थान पर स्थित होता है।

3. अष्टक – सात स्वरों में तार सप्तक का प्रथम स्वर सम्मिलित करके उनकी संख्या आठ मान ली जाती है। इस प्रकार का सप्तक, अष्टक कहलाता है। प्रायोगिक संगीत में सप्तक इसी रूप में प्रस्तुत किया जाता है– सा रे गा म प ध नि सां।

4. नायक – प्राचीन परम्पराओं में प्रचलित बंदिशों को बिना किसी बदलाव के प्रस्तुत करने वाला कलाकार नायक कहलाता है। नायक, अपने कला कौशल पर नियंत्रण रखते हुए गुरु–शिष्य परंपरा से सीखी बंदिशों को यथावत् प्रस्तुत करने वाला कलाकार होता है।

5. गायक – गुरु–शिष्य परंपरा से सीखी बंदिशों व गायन शैली को, अपने कला–कौशल से पुष्ट कर व सजा कर प्रस्तुत करने वाला कलाकार गायक कहलाता है। गायक सृजनात्मक शक्ति का धनी होता है। अनेक अवसरों पर वह अपने पूर्वाचार्यों से श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

6. वाग्गेयकार – वाग्गेयकार ऐसा कलाकार है जिसने शब्द रचना व सांगीतिक स्वर रचना दोनों में दक्षता प्राप्त की हो। तात्पर्य यह कि ऐसा कलाकार जो बंदिश के कवित्त भाग की रचना करने, उसे किसी राग के स्वरों में निबद्ध करने तथा उन्हें गाने की भी क्षमता रखता है, वह वाग्गेयकार कहलाता है।

7. सम – प्रत्येक ताल की प्रथम मात्रा सम कहलाती है। इसे ताली द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

8. खाली व ताली – जिस ताल में अधिक विभाग होते हैं उसके विभागों को पहचानने के लिए, कुछ विभागों को सशब्द क्रिया व कुछ को निःशब्द क्रिया द्वारा व्यक्त किया जाता है। जिन विभागों को निःशब्द क्रिया द्वारा व्यक्त किया जाता है वे खाली कहलाते हैं तथा जिन विभागों को सशब्द क्रिया द्वारा व्यक्त किया जाता है वे ताली द्वारा प्रदर्शित किए जाते हैं।

9. मुखड़ा – बंदिश या ताल में सम को प्रदिर्शित करने से पहले जिस भाग या टुकड़े का गायन या वादन किया जाता है वह मुखड़ा कहलाता है।

10. आलाप – राग के नियमों को ध्यान में रख कर उसके स्वरों का विलम्बित लय में गायन करना आलाप करना कहलाता है। इसे ही राग का स्वर–प्रस्तार या राग विस्तार भी कहते हैं। आलाप करते हुए राग के

आरोह–अवरोह, न्सास के स्वर, वादी–संवादी स्वर, महत्वपूर्ण स्वर–संगतियों आदि राग सूचक स्वर समूहों का ध्यान रखा जाता है।

11. तान – राग के आरोह–अवरोह व स्वरूप को ध्यान में रख कर उसके स्वरों का मध्य लय या द्रुत लय में प्रस्तार करना तान करना कहलाता है।

12. मुर्की – किसी स्वर को आधार मानकर उसके आगे व पीछे के स्वरों को अतिद्रुत लय में मात्र छूकर मूल स्वर का गान करना, मुर्की कहलाता है।

13. खटका – किसी स्वर का गान करते हुए झटका देकर अगले स्वर का गान करना, खटका कहलाता है।

14. मींड – एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना स्वर भंग किए जाना या उच्चारित करना मींड कहलाता है।

15. आंदोलन – किसी स्वर को उत्पन्न करके उसके आगे व पीछे के स्वरों को धीर–गम्भीर लय में झुलाते हुए उच्चरित करना व मूल स्वर पर लौटना, आंदोलन कहलाता है।

16. जुगलबंदी या युगलबंदी – जब दो कलाकार मिलकर कोई सांगीतिक रचना प्रस्तुत करते हैं तब उनकी वह प्रस्तुति जुगलबंदी या युगलबंदी कहलाती है। आधुनिक कालीन भारतीय संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों विधाओं में युगलबंदी की प्रथा प्रचलित है। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि संगीत की ऐसी प्रस्तुतियों में युगलबंदी कर रहे दोनों कलाकार मुख्य भूमिका का निर्वहन कर रहे होते हैं तथा उनके साथ मंच पर प्रस्तुति दे रहे कलाकार उनकी मात्र संगत करते हैं।

17. संगतकार – सांगीतिक प्रस्तुति में मंच पर आसीन मुख्य कलाकार का अनुसरण करने वाले अन्य कलाकार, संगतकर्ता कहलाते हैं।

18. वृन्द – वृन्द का शाब्दिक अर्थ है समूह। संगीत की सामूहिक प्रस्तुति को वृन्द कहा जाता है। यह तीन प्रकार का होता है–गान वृन्द, वाद्य वृन्द व नृत्त वृन्द। जब दो से अधिक गायक एक साथ मिलकर गायन प्रस्तुत करते हैं वह गान वृन्द या वृन्दगान कहलाता है। जब दो से अधिक वाद्य वादक एक साथ मिलकर वादन प्रस्तुत करते हैं तब वह वाद्य वृन्द कहलाता है। भरत मुनि ने वाद्य वृन्द के लिए ही कुतुप संज्ञा दी है। जब दो से अधिक नर्तक एक साथ मिलकर नर्तन प्रस्तुत करते हैं तब वह नृत्त वृन्द कहलाता है।

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. परांजपे, डा0 शरच्चन्द्र श्रीधर, 1994, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
2. सिंह, डॉ0 ठाकुर जयदेव, 1994, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता।
3. डंगवाल, मनीष, 2005, नारदीय शिक्षा में संगीत, राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. शर्मा, भगवत शरण, 1988, संगीत ग्रंथ सार, सखि प्रकाशन, गोटावाला कोठी, हाथरस।
5. वसंत, 2007, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
6. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, 1982,संगीत–पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, संगीत कार्यालय, हाथरस।
7. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनु0),2000, श्रीभरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
8. गोवर्धन, शान्ति, 1993 व 2007, संगीत शास्त्र दर्पण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
9. Sastri, ed. S. Subrahmanya, 1992, Samgitaratnakara of Sarngadeva, The Adyar Library and Research Centre, Madras.
10. Sharma, ed. Prem Lata, 1992, Brhaddesi of Sri Matanga Muni, Indira Gandhi National Centre for The Arts, New Delhi.
11. Nagar, ed. R. S., 2009, Natyasastra of Bharatmuni, Parimal Publications, Delhi.
12. Kavi, ed. M. Ramakrishna, 1980, Natyasastra of Bharatamuni, Oriental Institute, Baroda.

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, संगीत बोध, म0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
2. बृहस्पति, कैलाश चन्द्रदेव, भरत का संगीत सिद्धांत, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

3. विजयलक्ष्मी, डॉ0 एम0, संगीत निबन्धमाला, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, पं0 वि0डी0, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 से 6, संगीत कार्यालय, हाथरस।
5. ठाकुर, पं0 ओंकारनाथ, संगीतांजलि भाग 1 से 6, प्रणव स्मृति न्यास, वाराणसी।

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. साम विकार क्या है, समझाइए।
2. रामायण कालीन या महाभारत कालीन संगीत पर टिप्पणी कीजिए।
3. नारदीय शिक्षा या नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत पर निबंध लिखिए।
4. मतंग मुनि अथवा पं0 शार्ङ्गदेव के भारतीय संगीत में योगदान पर टिप्पणी कीजिए।
5. भारतीय संगीत में पं0 अहोबल या पं0 रामामात्य के योगदान पर चर्चा कीजिए।
6. भारतीय संगीत में जाति गायन क्या है, समझाइए।
7. राग व थाट को पारिभाषित करते हुए उनकी तुलना कीजिए।
8. भारतीय संगीत में ग्राम किसे कहते हैं तथा ग्राम कितने प्रकार के हैं?
9. मूर्च्छना व उसके प्रकारों पर टिप्पणी कीजिए।

इकाई 2 – लय, लयकारी, परन, गत, चक्करदार, नौहक्का की परिभाषा उदाहरण सहित।

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 परिभाषाएं
2.3.1 लय व लयकारी
2.3.2 परन
2.3.3 गत
2.3.4 चक्करदार
2.3.5 नौहक्का
2.4 सारांश
2.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0टी0–201) के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के इतिहास(प्राचीन काल से मध्यकाल तक) के विषय में जान गए होंगे।

इस इकाई में लय व लयकारी को समझाया किया गया है तथा तबले की रचनाओं जैसे परन, गत, चक्करदार, नौहक्का आदि का उदाहरण सहित वर्णन भी किया गया है। किसी भी चीज को परिभाषित करने से हमें उसे समझने में आसानी होती है और यही कार्य प्रस्तुत इकाई में किया गया है। आप उदाहरण से रचनाओं को स्पष्ट रूप से समझेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप लय व लयकारी को समझ सकेंगे तथा तबले की रचनाओं को पारिभाषिक रूप में जान पाएंगे। आप तबले की रचनाओं को समझकर समझा भी सकेंगे, इससे आपका संगीत का सैद्धान्तिक एवं प्रयोगिक पक्ष सबल होगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. तबले की रचनाओं को स्पष्ट रूप से समझ पाएंगे।
2. तबले की रचनाओं को समझ कर क्रियात्मक रूप में सफल प्रस्तुति दे सकेंगे।
3. बता सकेंगे की इन रचनाओं का क्या महत्व है।
4. तबले की रचनाओं की विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे।

2.3 परिभाषाएं

2.3.1 लय व लयकारी – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होने वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है। संगीत रत्नाकर के अनुसार – **'कियानान्तर विश्रांति लयः'** अर्थात क्रिया के अन्त में विश्रांति को लय कहते हैं। अमरकोश के अनुसार – **'क्रिया विश्रांति लयः'** अर्थात दो क्रियाओं के बीच के अन्तराल को लय कहते हैं।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई है। विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम होने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। *इन लयों के बीच कोई निश्चित रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती, इन्हें सापेक्षिक माना जाना चाहिए।* सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता है एवं द्रुत लय का विश्रांति काल मध्य लय के विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी। अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड, एवं बिआड प्रयोग की जाती हैं।

दुगुन – एक मात्रा में दो मात्रा — 1 2 1 2

तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्रा — 1 2 3 1 2 3

चौगुन – एक मात्रा में चार मात्रा — 1234 1234

आड – एम मात्रा में डेढ़ मात्रा अथवा दो मात्रा में तीन मात्रा आड लयकारी को ड्योडी लय भी कहा जाता हैं। इसको 3/2 की लयकारी के रूप में भी व्यक्त करते हैं। — 1 ऽ 2 ऽ 3 ऽ

कुआड – इस लयकारी के विषय में दो मत हैं। पहला– आड की आड को कुआड कहते हैं अतः 9/4, जिसके अनुसार चार मात्रा में नौ मात्रा अथवा एक मात्रा में $2\frac{1}{4}$ अथवा सवा दो मात्रा का प्रयोग करते हैं। दूसरा– 5/4 की लयकारी अर्थात चार मात्रा में पांच मात्रा अथवा एक मात्रा में सवा मात्रा। इस दूसरे मत का अधिक प्रचलन है एवं इसको सवागुन की लय भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार :–

1ऽ ऽ ऽ 2ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ

1 2 3 4

दूसरे मत के अनुसार :–

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ

1 2 3 4

बिआड – इस लयकारी के विषय में भी दो मत हैं। एक मत के अनुसार कुआड लय की आड बिआड लयकारी होती, जिसे $^{9}/_{4} \times {}^{3}/_{2} = \frac{27}{8}$ के रूप में व्यक्त करते हैं। दूसरे मत के अनुसार $^{7}/_{4}$ की लयकारी बिआड की लयकारी है। इसमें एक मात्रा में पौने दो गुन मात्रा प्रयोग की जाती है, जिसे पौने दो गुन की लयकारी भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार :–

1S S S S S S S 2 S S S S S S S 3 S S S S S S S 4 S S
S S S S S 5 S S S S S S S 6 S S S S S S S 7 S S S S S
S S 8 S S S S S S S 9 S S S S S S S S 10 S S S S S S S 11
S S S S S S S 12 S S S S S S S S 13 S S S S S S S S 14 S S S
S S S S 15 S S S S S S S S 16 S S S S S S S 17 S S S S S
S S 18 S S S S S S S 19 S S S S S S S 20 S S S S S S S 21 S
S S S S S S 22 S S S S S S S 23 S S S S S S S 24 S S S S
S S S 25 S S S S S S S 26 S S S S S S S 27 S S S S S S S

दूसरे मत के अनुसार–:

1 S S S 2 S S S 3 S S S 4 S S S 5 S S S 6 S S S 7 S S S

कुआड एवं बिआड में दूसरा मत ही अधिक प्रचलित एवं व्यवहारिक है, अतः लयकारी लिपिबद्ध करने में दूसरे मत का ही प्रयोग करेंगे। आड, कुआड एवं बिआड लयकारी लिखने के लिए इनकी भिन्न अथवा बटे में दिखाई संख्या से भाग देते हैं। गणित के अनुसार भाग देने में बटे की संख्या उल्टी हो कर गुणा में बदल जाती है। उदाहरण – आड को बट्टा संख्या $3/2 = 1\frac{1}{2}$

आड लयकारी की मात्रा संख्या = ताल की मात्रा × 2/3, किस मात्रा से आरम्भ की जानी है, इसके लिए उपर की संख्या को ताल की मात्रा संख्या से घटाते हैं।

ताल की मात्रा संख्या – ताल की भाग संख्या × 2/3 जो लयकारी लिखनी है। उसमें बट्टा के नीचे वाली राशी में से एक घटाकर उतनी संख्या के अवग्रह लगाते हैं।

उदाहरण– आड की लयकारी – $^{3}/_{2} = \xrightarrow{2-1=} 1$

कुआड की लयकारी– $^{5}/_{4} = \xrightarrow{4-1=} 3$

बिआड की लयकारी – $^{7}/_{4} = \underrightarrow{4-1=3}$

अतः आड की लयकारी को मात्रा के साथ एक अवग्रह, कुआड एवं बिआड की लयकारी में तीन अवग्रह लगाते हैं। इसके पश्चात बट्टा की ऊपर वाली राशि में विभाग बना लेते हैं। सरलता के लिए पीछे से विभाग बनाना शुरू करते हैं एवं पहली मात्रा में जितनी मात्रा कम होती हैं, मात्रा से पहले उतने अवग्रह लगा देते हैं, जो कि आप विभिन्न तालों में लयकारी के उदाहरण से समझेंगे।

2.3.2 परन – जोरदार व खुले बोलों की ऐसी रचना जो कम से कम दो आवृति की हो, तिहाई युक्त हो एवं जिसमें बोल दोहराते हुए प्रयोग किए जाए, परन कहलाती है। परन मुख्यतः पखावज पर बजाई जाने वाली रचना है, अतः तबले पर यह जोरदार ढंग से प्रस्तुत की जाती है। परन चक्करदार होने पर चक्कदार परन कहलाती है। **उदाहरण :–**

तीनताल में परन

धिटधिट	धागेतिट	कऽधातिट	धागेतिट	कऽधातिट	कऽधातिट	कऽधातिट	धागेतिट
×				2			
गदीगन	नागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	कतिटत	किनताके	तिटकता	गदीगिन
0				3			
धागेतिट	ताकेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	धित्ततगे	ऽनधित्त	तगेऽन	धित्ततास
×				2			
तिरकिटधित्त	तगेऽन	धा	तिरकिटधित्त	तगेऽन	धा	तिरकिटधित्त	तगेऽन	**धा**
0				3				×

2.3.3 गत :–

- **दर्जेवाली गत** – ऐसी गत जिसके विभिन्न लयकारी के दर्जे बनाकर बजाए जाएं, दर्जेवाली गत कहलाती है। **उदाहरण :–**

तिगुन :–

धाऽन	धितिट	तकिट	धितिट	धातिरकिट	धितिट	कताग	दीगिन
नगन	गनग	तकिट	धितिट	धातिरकिट	धितिट	कताग	दीकिन

चौगुन :–

धाऽनधि	किटतकि	टधितिट	धातिरकिटधि	तिटकता	गदीकिन	तिटकता	गदीकिन
नगनग	नगतकि	टधितिट	धगतिटकिधि	तिटकता	गदीगिन	तिटकता	गदीगिन

छःगुन :–

धाऽनधितिट	तकिटधितिट	धातिरकिटधितिट	कतागदीगिन
नगनगनग	तकिटधितिट	धातिरकिटधितिट	कतागदीकिन

तिपल्ली एवं चौपल्ली गतों को भी दर्जेवाली गत की श्रेणी में रखा जाता है।

- **मंजेदार गत** – गत की ऐसी रचना जिसमें लय परिवर्तन हो मंजेदार गत कहते हैं। उदाहरण :–

तीनताल में मंजेदार गत

धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	कऽधा	तिट	धुमकिट	
×				2				
तकधुम	किटतक	गदीगिन	धागेतिट	गदिगिन	नागेतिट	धुम	किट	
0				3				
धाऽ	तिट	धाऽ	तिट	कऽधा	तिट	कऽधा	तिट	
×				2				
घेऽ	तघे	ऽत	घेऽ	घेऽ	ताऽ	तिटकता	गदीगिन	धा
0				3				×

- **तिश्र जाति की गत** – गत की ऐसी रचना जो तिश्र जाति में अर्थात आड अथवा तिगुन की लयकारी में हो तिस्त्र जाति की गत कहलाएगी। उदाहरण :–

तीनताल में गत

धाऽन	नाऽन	नकिट	नकिट	धातिरकिट	धितिट	धेऽत	राऽन	
×				2				
कऽति	टकत	धेऽत	राऽन	धातिरकिट	धितिट	कताग	दीगन	
0				**3**				
नगन	गनग	तकिट	तकिट	धातिरकिट	धितिट	धेऽत	राऽन	
×				**2**				
कऽति	टकत	धेऽत	राऽन	धातिरकिट	धितिट	कताग	दीकिन	**धा**
0				**3**				×

- **मिश्र जाति की गत** – गत की ऐसी रचना जो मिश्र जाति के बोलों की रचना में हो मिश्र जाति की गत कहते हैं। इस प्रकार की गत बोलना सतगुन लय की गत भी कहा जाता है। इसमें एक मात्रा में सात वर्ण आते है। उदाहरण :–

धागेनधिनधिन	धागेनदिनतक	तकघेतकधिन	धागेनदींऽनाना	धा
तिरकिटतकतातिरकिटतक	तिरकिटतकधिरधिरकऽत	तिरकिटतकधिरधिरकऽत	तिरकिटतकधिरधिरकऽत	×

- **चारबाग गत** – गत की ऐसी रचना जिसमें एक बोल चार–चार प्रयोग करते हैं चारबाग गत कहते हैं।

उदाहरण :–

तीनताल में चारबाग गत

गिनधाऽ	गिनधाऽ	गिनधाऽ	गिनधाऽ	धाऽागिन	धाऽागिन	धाऽागिन	धाऽागिन
×				2			
धाऽगिन	धाऽगिन	धाऽगिन	धाऽगिन	दिनतक	दिनतक	दिनतक	दिनतक
0				3			
तकदिन	तकदिन	तकदिन	तकदिन	तकतक	तकतक	नड़नऽ	नऽनऽ
×				2			

तिरकिटतक 0	तिरकिटतक	तिरकिटतक	तिरकिटतक	धाऽगिन 3	धाऽगिन	धाऽगिन	धाऽगिन	
किनताऽ ×	किनताऽ	किनताऽ	किनताऽ	ताऽ़किन 2	ताडाकिन	ताडाकिन	ताडाकिन	
ताऽकिन 0	ताऽकिन	ताऽकिन	ताऽकिन	तिनतक 3	तिनतक	तिनतक	तिनतक	
तकतिन ×	तकतिन	तकतिन	तकतिन	तकतक 2	तकतक	नऽनऽ	नऽनऽ	
तिरकिटतक 0	तिरकिटतक	तिरकिटतक	तिरकिटतक	धाऽगिन 3	धाऽगिन	धाऽगिन	धाऽगिन	धा ×

तबला ग्रन्थ पेज – 132

2.3.4 चक्करदार – जब कोई तिहाई युक्त रचना तीन बार बजाकर सम पर आए तो ऐसी रचना चक्करदार कहलाती है। जैसे किसी टुक्डे को तीन बार बजा कर सम पर आए तो उसे चक्करदार टुक्डा कहेंगे। इसी प्रकार चक्करदार परन, चक्करदार तिहाई(नौहक्का) आदि। इसके तीन प्रकार माने गए हैं–साधारण चक्करदार, फरमाइशी चक्करदार व कमाली चक्करदार। उदाहरण :–

फरमाइशी चक्करदार टुकडा – तीनताल

घेतिर ×	किटतक	ता	ऽ	घेतिर 2	किटतक	ताऽ	कता	
गऽ 0	दींऽ	कत	धाऽ	घेतिर 3	किटतक	ताऽ	कता	
धा ×	घेतिर	किटतक	ताऽ	कता 2	धा	घेतिर	किटतक	
ताऽ 0	कता	धा	घेतिर	किटतक 3	ता	ऽ	घेतिर	
किटतक ×	ताऽ	कता	गऽ	दींऽ 2	कत	धाऽ	घेतिर	
किटतक 0	ताऽ	कता	धा	घेतिर 3	किटतक	ताऽ	कता	
धा ×	घेतिर	किटतक	ताऽ	कता 2	धा	घेतिर	किटतक	
ता 0	ऽ	घेतिर	किटतक	ताऽ 3	कता	गऽ	दींऽ	
कत ×	धाऽ	घेतिर	किटतक	ताऽ 2	कता	धा	घेतिर	
किटतक 0	ताऽ	कता	धा	घेतिर 3	किटतक	ताऽ	कता	धा ×

साधारण चक्करदार टुकड़ा – तीनताल

दींदीं	तिटतिट	धागेतिट	ताकेतिट	कऽधातिट	कऽताऽ	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×				2			
ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा
0				3			
धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा	ऽ	दींदीं	तिटतिट
×				2			
धागेतिट	ताकेतिट	कऽधातिट	कऽताऽ	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन
0				3			
धा	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×				2			
ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा	ऽ	दींदीं	तिटतिट	धागेतिट	ताकेतिट
0				3			
कऽधातिट	कऽताऽ	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा	धातिरकिटतक
×				2			
तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन	धा	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	ताकडाऽन
0				3			
धा							
×							

2.3.5 नौहक्का – जब कोई तिहाई पूरी–पूरी तीन बार बजाकर सम पर आए तो ऐसी रचना नौहक्का कहलाती है। इसे चक्करदार तिहाई भी कह सकते हैं। इस रचना में तिहाई के 9 पल्ले होते हैं इसलिए इसे नौहक्का कहा जाता है। उदाहरण :–

तीनताल में नौहक्का

तिटकता	गदिगन	धाति	धातिट	कतागदि	गनधा	तिधा	तिटकता	
X				2				
गदिगन	धाति	धाऽ	तिटकता	गदिगन	धाति	धातिट	कतागदि	
0				3				
गनधा	तिधा	तिटकता	गदिगन	धाति	धाऽ	तिटकता	गदिगन	
X				2				
धाति	धातिट	कतागदि	गनधा	तिधा	तिटकता	गदिगन	धाति	धा
0				3				X

एक अन्य मत के अनुसार एक ऐसी रचना जिसकी तिहाई में 9 धा बराबर व लगातार आएं उसे नौहक्का कहते हैं। आड़ाचौताल में नौहक्का(पं. विजयशंकर मिश्र की पुस्तक तबला पुराण से) प्रस्तुत है :–

धाधा	दींदीं	नाना	तेटेतेटे	किटिरकिटधे	तेटे,कत	धा,कत	धा,कत
X		2		0		3	
धा,कत	धा,कत	धा,कत	धा,कत	धा,कत	धा,कत	धा	
0		4		0		X	

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. लय व लयकारी को समझाइए।
2. गत एवं परन की तुलना कीजिए।
3. चक्करदार को उदाहरण सहित समझाइए।

2.4 सारांश

इस इकाई में आप तबले की विभिन्न रचनाओं व शब्दावली की परिभाषाओं से परिचित हो चुके होंगे। तबले के पूर्वज विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के तबले के वर्णों के संयोग से बोल रचित कर एवं लय–गति के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर तबला वादन हेतु रचनाए की थी। इन्हीं रचनाओं का बाद में नामकरण किया गया और वे तबले की रचनाओं की शब्दावली बनी। इन शब्दावली की विद्वानों द्वारा व्याख्या की गई एवं इनको परिभाषा रूप में प्रस्तुत किया गया। परिभाषा रूप में आपने इस इकाई में तबले की रचनाओं का अध्ययन किया जिससे आप तबले के सैद्धान्तिक पक्ष को समझेंगे एवं इन रचनाओं का क्रियात्मक रूप में सफल प्रस्तुतीकरण कर पाएंगे।

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, पं0 छोटे लाल, *तबला ग्रन्थ*, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. मिश्र, पं0 विजयशंकर, तबला पुराण, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, श्री गिरीश, ताल परिचय, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. शर्मा, श्री भगवतशरण, *ताल प्रकाश*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गत, चक्करदार व परन की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 – देहली, अजराडा, लखनऊ, बनारस, पंजाब व फर्रुखाबाद घरानों का विस्तृत अध्ययन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 तबले के घराने
3.3.1 देहली घराना
3.3.1.1 देहली घराने की वादन शैली अथवा बाज
3.3.2 अजराडा घराना
3.3.2.1 अजराडा घराने की वादन शैली अथवा बाज
3.3.3 लखनऊ घराना
3.3.3.1 लखनऊ घराने की वादन शैली अथवा बाज
3.3.4 बनारस घराना
3.3.4.1 बनारस घराने की वादन शैली अथवा बाज
3.3.5 पंजाब घराना
3.3.5.1 पंजाब घराने की वादन शैली अथवा बाज
3.3.6 फर्रुखाबाद घराना
3.3.6.1 फर्रुखाबाद घराने की वादन शैली अथवा बाज
3.4 तबले की वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन
3.5 सारांश
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठयक्रम(बी0ए0एम0टी0–201) के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप भारतीय संगीत के इतिहास(प्राचीन काल से मध्यकाल तक) के विषय में जान गए होंगे। आप तबले की रचनाओं जैसे लय, लयकारी, परन, गत, चक्करदार, नौहक्का को भी समझ चुके होंगे।

इस इकाई में तबले के घरानों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत है। प्रत्येक घराने की अपनी वादन शैली है जिसको बाज कहा जाता है। आप प्रत्येक बाज का अध्ययन इस इकाई में करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप तबला के घरानों से भली–भांति परिचित हो सकेंगे एवं इन घरानों की परम्परा एवं वादन शैली को भी समझ सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- तबले के विभिन्न घरानो के विषय में जानेंगे।
- तबले के विभिन्न घरानो की वादन शैली एवं उनके तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से प्रत्येक बाज की उपयोगिता समझ सकेंगे।
- अपने लिए वादन शैली का चयन कर पाएंगे।

3.3 तबले के घराने

तबला वाद्य, पखावज वाद्य के बाद अस्तित्व में आया। भवानी दास अथवा भवानी सिंह अथवा भवानीदीन के शिष्य पंजाब के ताज खाँ डेरेदार कादिर बख्श (प्रथम) एवं हददू खाँ ने पखावज के पंजाब घराने की नींव डाली एवं कादिर बख्श के पौत्र मियां फकीर बख्श ने पंजाब के लोक वाद्य दुक्कड की वादन शैली के साथ मिलाकर तबले के पंजाब घराने की स्थापना की। अतः पंजाब में तबला वादन शैली का मुख्य आधार पखावज वादन शैली एवं दुक्कड की वादन शैली है। सिद्धार खाँ जिनको तबला वादन शैली का जन्मदाता माना जाता है वे भावानी दास के समकालीन थे। अतः तबला की वादन शैली पंजाब से पहले सिद्धार खाँ द्वारा स्थापित की गई थी। यद्यपि पंजाब के तबले की वादन शैली पर सिद्धार खाँ की वादन शैली का प्रभाव नहीं देखा जाता है। उस्ताद सिद्धार खां के वंशजों एवं शिष्यों के द्वारा तबला वादन शैली में विकास किया गया जिससे वर्तमान में प्रचलित तबले के घराने दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रुक्खाबाद एवं बनारस घराने अस्तित्व में आए। पंजाब घराने का इनसे स्वतंत्र अस्तित्व है। निम्न तालिका से आप भिन्न–भिन्न घराने की स्थापना के विषय में समझेंगे।

इस प्रकार आज उत्तर भारतीय संगीत में तबले के मुख्य छः घराने प्रसिद्ध हैं।

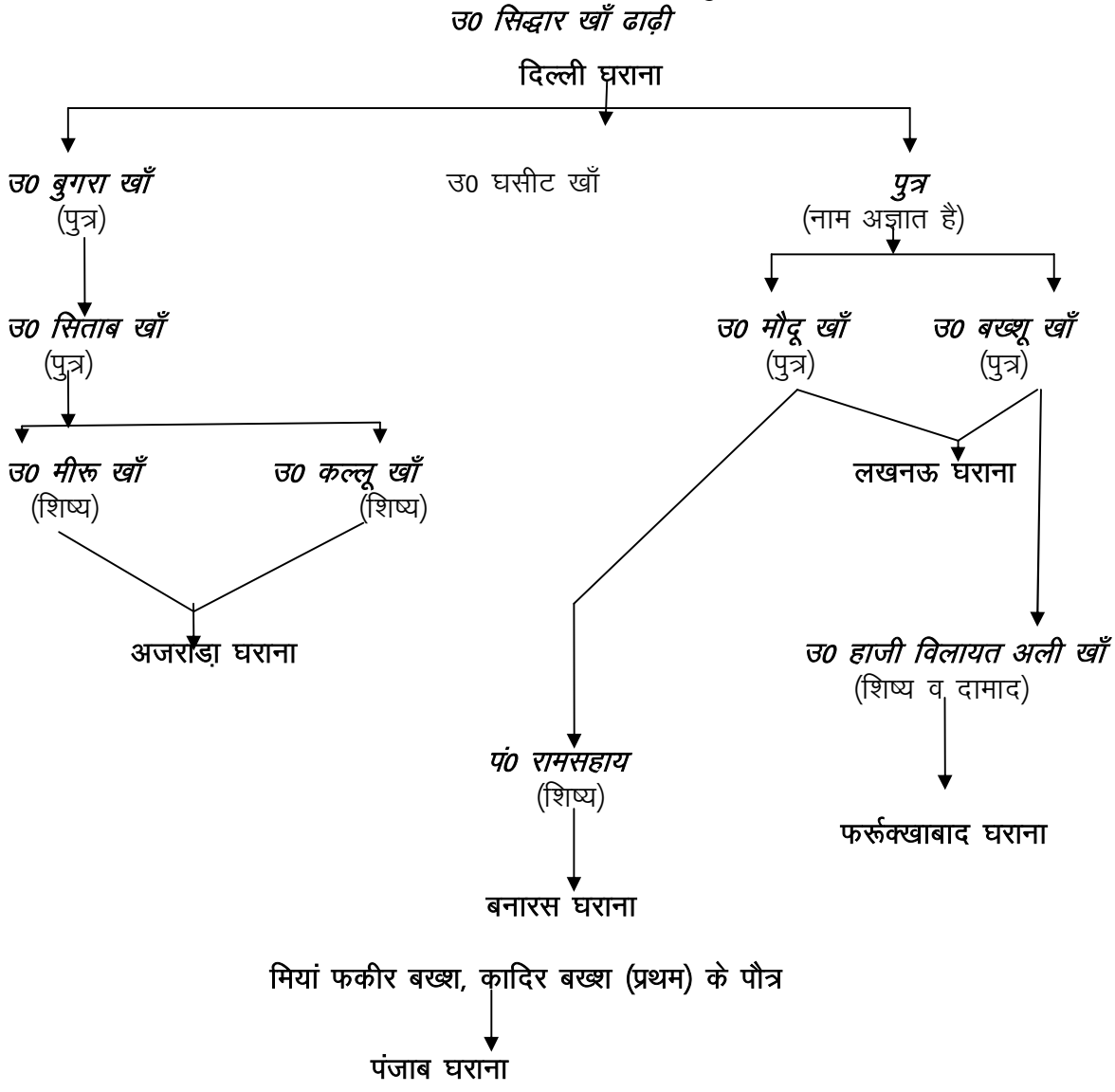

इस प्रकार सिताब खाँ के पुत्र बुगरा खाँ एवं गुलाब खाँ से देहली घराना, सिताब खाँ के दो शिष्य मीरु खाँ एवं कल्लू खाँ से अजराडा घराना, मोदू खाँ एवं बख्शू खाँ से लखनऊ घराना, बख्शू खाँ के दामाद हाजी विलायत अली से फर्रूक्खाबाद घराना, मोदू खाँ के शिष्य पं0 राम सहाय से बनारस घराने की स्थापना हुई। मियां फकीर बख्श ने पंजाब घराने की नींव डाली।

3.3.1 देहली घराना – तबले के देहली घराने की नींव सिद्धार खाँ ने डाली। सिद्धार खाँ पखावजी थे। इन्होंने पखावज के बोलों में परिवर्तन कर उनको तबले पर बजाने योग्य बनाया एवं तबले की शैली को जन्म दिया। सिद्धार खाँ के वंश परम्परा और शिष्य परम्परा द्वारा तबले के अन्य घरानो की नींव डाली गई। केवल पंजाब घराना स्वतंत्र रुप से विकसित हुआ। देहली घराने की वंश परम्परा सिद्धार खाँ के बड़े पुत्र बुगरा खाँ एवं छोटे भाई चाद खाँ द्वारा आगे बडी। घसीट खाँ, जो सिद्धार खाँ के पुत्र थे उनकी वंश परम्परा की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इनके तीसरे पुत्र जिनका नाम प्राप्त नहीं होता है, के दो पुत्र बख्शू खाँ एवं मोदू खाँ द्वारा लखनऊ घराने की स्थापना हुई।

बुगरा खाँ के दो पुत्र सिताब खाँ एवं गुलाब खाँ थे। सिताब खाँ के पुत्र नजीर अली, नाती बडे काले खाँ व इनके पुत्र बोली बख्श के द्वारा देहली घराने को सृमद्ध किया गया। बोली बख्श के पुत्र नत्थू खाँ एवं भतीजे अल्लादिया खाँ ने देहली घराने की परम्परा को आगे बढाया। बहादुरशाह जफर के पुत्र फिरोज शाह एवं मुनीर खाँ भी बोली बख्श के शिष्य थे। फिरोज शाह के प्रसिद्ध शिष्य जहांगीर खाँ (इंदौर) ने लखनऊ घराने के विकास में एवं मुनीर खाँ ने फर्रूखाबाद घराने के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अल्लादिया के दो पुत्र छोटू खाँ एवं मोहम्मद खाँ हैदराबाद में आकर बस गए एवं इनके द्वारा हैदराबाद में देहली घराने की वादन शैली का प्रचार एवं प्रसार किया गया। शेख दाउद ने इस परम्परा को स्वयं एवं शिष्यों के माध्यम से प्रसारित किया।

बोली बख्श के पुत्र नत्थु खाँ ने तबला वादन में बहुत ख्याति अर्जित की। इनकी शिष्य परम्परा में प्रमुख है मोहम्मद अहमद(बम्बई), हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी(कलकत्ता), शमसुद्दीन खाँ, इबीबूद्दीन खॉ। बुगरा के दुसरे पुत्र गुलाब खाँ के द्वारा इस घराने की एक अन्य परम्परा चली। गुलाब खाँ के पुत्र मुहम्मद खाँ, इनके पुत्र छोटे काले खाँ, इनके शिष्य गामी खाँ, इनके पुत्र इनाम अली एवं इनके शिष्य लतीफ अहमद ने देहली घराने के कलाकार के रुप में प्रतिष्ठा पाई। वर्तमान में इनाम अली के पुत्र गुलाम हैदर इस परम्परा के संवाहक है। सिद्धार खाँ के छोटे भाई चांद खाँ द्वारा भी देहली घराने की परम्परा चली जिससे इनके पुत्र लल्ली मसीत खाँ एवं इनके पुत्र लंगडे हुसैन ने योगदान दिया। लंगडे हुसैन के तीन पुत्र घसीट खाँ, गुलाम अहमद एवं नन्हे खाँ थे। इस परम्परा को मुख्य रुप से घसीट खाँ एवं नन्हे खाँ ने आगे बढाया।

घसीट खाँ की शिष्य परम्परा में फजली खाँ, काले खाँ, छम्मा खाँ एवं इनके शिष्य शफात अहमद हुए। नन्हे खाँ की शिष्य परम्परा में अजीम बख्श जावरे वाले एवं जुगना खाँ हुए। अजीम बख्श ने अपने शिष्यों द्वारा तबले का प्रचार किया। इनके शिष्यो में इनके पुत्र निजामुद्दीन, दामाद इश्तियाक अहमद, हिदायत खाँ (जयपुर), फैमाज खाँ (देहली) एवं ज्ञान प्रकाश घोष हुए। ज्ञान प्रकाश घोष ने भी तबले का प्रसार किया। इनके योग्य एवं प्रमुख शिष्य कन्हाई दत्त एवं निखिल घोष ने तबला वादन के क्षेत्र में नाम कमाया। वर्तमान में निखिल घोष के पुत्र नयन घोष तबले के सफल कलाकार हैं। देहली घराने की शिष्य परम्परा विशाल है। प्रारम्भ में सभी के द्वारा देहली घराने से तबले की शिक्षा प्राप्त की गई एवं बाद में अन्य घरानों से शिक्षा प्राप्त कर तबला वादन शैली को सृमद्ध किया जो कि आप निम्न तालिका से भलि भॉति समझेंगे।

देहली घराना
सिद्धार खाँ

बुगरा खाँ (पुत्र)	घसीट खाँ (पुत्र)	पुत्र (नाम अज्ञात)	चांद खाँ(छोटे भाई)

बुगरा खाँ (पुत्र)

सिताब खाँ (पुत्र) — गुलाब खाँ (पुत्र)

नजीर अली(पुत्र) — मुहम्मद खाँ (पुत्र)

बडे काले खाँ(नाती) — छोटे काले खाँ (पुत्र)

बोली बख्श(पुत्र) — गामी खाँ

इनाम अली (पुत्र)

गुलाम हैदर (पुत्र) — लतीफ अहमद

चांद खाँ (सिद्धार खां के छोटे भाई)

लल्ली मसीत खां (पुत्र)

लंगडे हुसैन खां (पुत्र)

लंगडे हुसैन खां (पुत्र)

घसीट खाँ (पुत्र) — गुलाम अहमद (पुत्र) — नन्हे खाँ (पुत्र)

फजली खाँ (शिष्य)

काले खाँ (शिष्य)

छम्मा खाँ (शिष्य)

शफात अहमद (पुत्र)

अजीम बख्श — जुगना खाँ

शेर खाँ(मुरादाबाद) — महबूब खाँ मिरजकर

शेख दाउद

अजीम बख्श(जावरे वाले)

निजामूदीन (पुत्र) — इम्तियाक अहमद (दामाद) — हिदायत खां (जयपुर) — फैयाज खां (देहली) — ज्ञानप्रकाश घोष (कलकत्ता)

ज्ञान प्रकाश घोष

निखिल घोष — कन्हाई दत्त

नयन घोष (पुत्र)

बोल

ी बख्श

नत्थु खां(पुत्र) अल्लादिया खां(भतीजा) फिरोज शाह(बहादुर शाह के पुत्र) मुनीर खां

जहांगीर खां

छोटे खाँ(पुत्र) मोहम्मद खाँ(पुत्र)

शेख दाउद

शाबिर(पुत्र) नन्द कुमार किरण देशपाण्डे विजय कृष्ण

जहांगीर खां

शेख दाउद अब्दुल हफीज (उदयपुर) इस्माईल हददू चतुर लाल महबूब खाँ मिरजकर नारायणराव (इन्दौर)

3.3.1.1 देहली घराने की वादन शैली अथवा बाज – देहली घराने की वादन शैली का जन्म एवं विकास देहली में ही हुआ इसलिए इसे देहली बाज कहा जाता है। इसमें दाहिने तबले की स्याही पर तर्जनी (पहली अंगुली) एवं मध्यमा (बीच की अंगुली) ही प्रयोग की जाती है अतः इसको दो अंगुली का बाज कहते हैं। तिट एवं तिरकिट के लिए एक समय पर एक ही अंगुली का प्रयोग करते हैं। तिट बोल ति वर्ण को मध्यमा से स्याही पर दबाकर आघात करने से एवं ट वर्ण तर्जनी अंगुली से ति के ही स्थान पर आघात करने से प्राप्त करते हैं। धा एवं ता वर्ण तर्जनी अंगुली को किनार पर दबाकर निकाला जाता है। बोलों की रचनाओं में किनार का बडा सुन्दर प्रयोग किया जाता है इसलिए देहली बाज को किनार का बाज भी कहा जाता है। पखावज के खुले बोलों के विपरीत तबले पर बन्द बोलों का प्रयोग किया जाता है जिससे यह बाज कोमल एवं मधुर है। इस बाज में दाहिने तबले पर हाथ का फैलाव कम रहता है अतः इस बाज की रचनाएं अधिक लय में बजाई जा सकती हैं। इस बाज की विशेषता मुख्य रूप से इसके पेशकार एवं कायदे हैं। कायदों में पल्टे बजाना ही इसकी मुख्य विशेषता है। मूलतः इस बाज में गत, परन नहीं थी परन्तु बाद में देहली बाज के बोलों की निकास की शैली पर रेला एवं कुछ गतों का भी निर्माण किया गया। परन इस शैली में नहीं है। छोटे–छोटे टुकड़े, मुखडे एवं मोहरें भी वादन शैली (बन्द बोल) के अनुसार इस बाज में पाए जाते हैं, यद्यपि इनको इस बाज में अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। देहली बाज के कायदे चतस्त्र जाति में होते हैं। कायदों का उदाहरण निम्न हैः–

कायदा – 1

धाति टधा तिट धाधा। तिट धागे तिना किन।

x 2

ताति टता तिट ताता। तिट धागे धिना गिन। धा

0 3 **x**

कायदा – 2

धाती धागे नधा तिरकिट। धाति धागे तिना किन।

x 2

ताती ताके नाता तिरकिट। धाति धागे धिना गिन। धा

0 3 x

3.3.2 अजराडा घराना – देहली घराने के सिताब खां के दो शिष्य मीरू खाँ एवं कल्लू खाँ, उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के एक गाँव अजराडा में आकर बस गए थे। इन दोनों भाइयों द्वारा देहली बाज में परिवर्तन कर नवीन शैली का विकास किया एवं यह घराना अजराडा गाँव के नाम से ही अजराडा घराना कहलाया। इस घराने को देहली घराने की शाखा माना जाता है। कल्लू एवं मीरू खाँ के वंशज मोहम्मदी बख्श के वंशजों ने इस घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया। मोहम्मदी बख्श के पौत्र काले खाँ एवं इनके पुत्र कुतुबबख्श हुए। काले खाँ के दो अन्य पुत्र थे, परन्तु इस घराने की परम्परा मुख्य रूप से कुतुब बख्श से आगे बढ़ी। कुतुब बख्श एवं इनके पुत्र हस्सू खाँ अपने समय के श्रेष्ठ तबला वादक थे। हस्सू खाँ के दो पुत्र बब्बू खाँ, शम्भू खाँ एवं भान्जे नन्हें खाँ ने इस घराने के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया एवं अपने–अपने स्तर से इस घराने की शैली को विकसित किया। बब्बू खाँ के पुत्र अजीजूद्दीन खॉ, शम्भू खाँ के पुत्र हबीबूद्दीन खाँ एवं भतीजे अब्दुल करीम खाँ (चौधरी) ने इस घराने की परम्परा को अपने शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ाया। नन्हें खाँ से भी अजराडा घराने की परम्परा चली जिसमें नियाजु खाँ एवं हशमत अली हुए। वर्तमान में इस घराने की परम्परा को हशमत अली एवं इनके पुत्र अकरम खाँ आगे बढ़ा रहे हैं। अजीजूद्दीन की शिष्य परम्परा में महबूब हुसैन एवं विजय कृष्ण इस परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। हबीबूद्दीन अपने समय के बेजोड़ तबला वादक हुए। उनकी शिष्य परम्परा बहुत लम्बी है जो कि आप तालिका के माध्यम से समझेंगे। वर्तमान में हबीबूद्दीन की परम्परा को उनके पुत्र मंजू खाँ एवं शिष्य सुधीर कुमार सक्सेना अपने शिष्यों के माध्यम से जीवित रखे हुए हैं।

अजराडा घराना

कल्लू खाँ – मीरु खाँ	शम्मू खाँ
मोहम्मदी बख्श	अब्दुल करीम (भतीजा), हबीबूद्दीन (पुत्र)

कल्लू खाँ – मीरु खाँ
|
मोहम्मदी बख्श
|
चांद खाँ
|
काले खाँ(काले कन्दू)(पुत्र)
|
कुतुब बख्श
|
हस्सू खाँ

शम्मू खाँ
|
अब्दुल करीम (भतीजा) | हबीबूद्दीन (पुत्र)

हस्सू खाँ

बब्बू खाँ(पुत्र)
|
अजीजूद्दीन खाँ (पुत्र)

शम्मू खाँ
|
हबीबूदीन खाँ(पुत्र) | अब्दुलकरीमखाँ(भतीजा)

नन्हे खाँ(भान्जे)
|
हसमत अली खाँ
|
अकरम खाँ(पुत्र)

अजीजूद्दीन खाँ की शिष्य परम्परा में महबूब हुसैन (श्रीनगर), बशीर अहमद(देहली), यामीन खाँ बम्बई, नजीर खाँ, ईश्वर सिंह, अभय प्रकाश, विजय कृष्ण, राजेश कान्ता हैं। हबीबूदीन खाँ की शिष्य

परम्परा में मन्जु खाँ(पुत्र), रमजान खाँ(भतीजा), सुधीर कुमार सक्सेना(बडौदा), हजारी लाल(मेरठ), मनमोहन सिंह, अमीर मोहम्मद, यशवन्त केलकर, सुन्दर लाल गंगाजी आदि हैं।

3.3.2.1 अजराडा घराने की वादन शैली अथवा बाज – उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के गांव अजराडा के नाम पर ही इसकी वादन शैली अजराडा बाज के नाम से जानी गई। देहली घराने की वादन शैली में बाएं बोलों का प्रयोग एवं तिस्र जाति(आड लय) का प्रयोग कर अजराडा बाज, मौलिक शैली के रूप में स्थापित हुआ। घेघे नक, घेतक, धात्रक, दिगदिनागिक बोलों के प्रयोग से नवीन कायदों की रचना की गई। देहली घराने की अपेक्षा अजराडा घराने के कायदे लम्बे होते हैं एवं इनमें देहली घराने की अपेक्षा कायदे में पल्टे बजाने की संम्भावना कम होती है। देहली घराने की भांति अजराडा बाज भी मुख्यतः पेशकार एवं कायदे के लिए प्रसिद्ध है। मुखड़े, मोहरे, टुकड़े, रेले एवं गत की संख्या बहुत कम है। अजराडा बाज मुख्यतः देहली की भांति कायदों का बाज है। अजराडा घराने के कलाकार अजराडा बाज के साथ–साथ देहली के कायदों का भी प्रयोग करते हैं। अजराडा घराने के प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद हबीबूद्दीन खाँ, जो कि देहली घराने के उस्ताद नत्थु खाँ के शिष्य भी थे, देहली एवं अजराडा बाज को बड़ी ही दक्षता से प्रस्तुत करते थे। बाएं तबले के बोलों का दाहिने तबले के बोलों के साथ लड़न्त एवं आडलय के कायदे इस बाज की विशेषता है। निम्न कायदों के उदाहरण से आप अजराडा बाज को अच्छी प्रकार समझेंगे।

कायदा – 1 तिस्त्र जाति, (आडलय)

धागेन धात्रक धितिट धगेन। धात्रक धिनग तिंगति नाकिन।

x 2

तकेन तात्रक तितिर तकेन। धात्रक धिनग दिनादि नागिन। धा

0 3 **x**

कायदा – 2 तिस्र जाति (आडलय)

धा–धा –धा– गिनधा –गिन। धात्रक धितिट धिनादि नागिन।

x 2

धात्रक धितिट गिनधा –गिन। धात्रक धितिट धिनति नाकिन।

0 3

ता–ता –ता– किनता –किन। तात्रक तितिट किनति नाकिन।

x 2

धात्रक धितिट गिनधा –गिन। धात्रक धितिट धिनधि नागिन। धा

0 3 **x**

3.3.3 लखनऊ घराना – लखनऊ घराने के संस्थापक उ0 सिद्दार खाँ के पौत्र मोदू खाँ एवं बख्शू खाँ थे। लखनऊ के नवाब के बुलाने पर मोदू खाँ लखनऊ आ गए एवं बाद में इनके छोटे भाई बख्शू खाँ भी लखनऊ आ गए। लखनऊ की संगीत की आवश्यकता के अनुसार मोदू खाँ ने देहली के बाज में परिवर्तन किया एवं देहली बाज से हटकर एक नवीन तबला वादन शैली का निर्माण किया। मोदू खाँ के एक पुत्र जाहिद खाँ थे जिनको मोदू खाँ ने तैयार किया था परन्तु वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहे, अतः लखनऊ घराने की परम्परा उनके छोटे भाई बख्शू खाँ के पुत्र मम्मन खॉ(मम्मू खॉ) से आगे चली। मम्मन खाँ ने अधिक शिक्षा मोदू खाँ से ही प्राप्त की थी। मम्मन खाँ के पुत्र मोहम्मद खाँ हुए। मोहम्मद खाँ के दो पुत्र बड़े मुन्ने खाँ एवं आबिद हुसैन एवं शिष्य वाहिद हुसैन थे। लखनऊ घराने की परम्परा मुख्य रूप से आबिद हुसैन से ही चली। आबिद हुसैन के कई शिष्य हुए जिनमें प्रमुख इनके दामाद एवं भतीजे वाजिद हुसैन, हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी, जहॉगीर खाँ (इन्दौर), अजीम बख्श एवं बनारस के बीरू मिश्र आदि थे। इन शिष्यों के माध्यम से लखनऊ घराने का प्रसार हुआ। वाजिद हुसैन के पुत्र आफाक हुसैन श्रेष्ठ तबला वादक हुए। वर्तमान में इनके पुत्र इलमास खाँ इस घराने का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। अजीम बख्श के पुत्र निजामुद्दीन हुए जिन्होंने लखनऊ बाज की लग्गी–लड़ी

बजाने में विशेष ख्याति अर्जित की। जहांगीर खाँ की शिष्य परम्परा बहुत अधिक है इनके प्रमुख शिष्यों में महबूब खाँ मिरजकर, इस्माइल ददू, अब्दुल हाफिज एवं शेख दाउद हैं। लखनऊ घराने के मोदू खाँ से शिक्षा प्राप्त पं0 रामसहाय ने बनारस घराने की स्थापना की एवं बख्शू खाँ के दामाद हाजी विलायत अली के द्वारा फर्रूखाबाद घरानें की नींव पड़ी।

लखनऊ घराना

मोदू खाँ

बख्शू खाँ

मम्मन खाँ (मम्मू खाँ)(पुत्र)

मोहम्मद खाँ(पुत्र)

मोहम्मद खाँ

मुन्ने खाँ(पुत्र) वाहिद खाँ आबिद हुसैन(पुत्र)

आबिद हुसैन

वाजिद हुसैन (दामाद एवं भतीजा) हिरेन्द किशोर राय चौधरी अजीम बख्श जहागीर खाँ(इन्दौर)

आफाक हुसैन(पुत्र)

इलमास खाँ(पुत्र)

निजामुद्दीन(पुत्र)

जहागीर खाँ (इन्दौर)

अब्दुल हाफिज उदयपुर इस्माल ददू महबूब खाँ मिरजकर शेख दाउद

3.3.3.1 लखनऊ घराने की वादन शैली अथवा बाज – लखनऊ बाज देहली बाज की अपेक्षा खुला एवं जोरदार है। लखनऊ बाज का विकास लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के समय में हुआ जिस समय लखनऊ में नृत्य का प्रचार था एवं ठुमरी व दादरा गायन भी प्रचलित था। मोदू खाँ से पूर्व लखनऊ में भी पखावज का ही प्रयोग नृत्य के साथ हो रहा था। परन्तु नृत्य में ठुमरी भाव एवं स्वतन्त्र ठुमरी गायन के साथ पखावज की संगत उपयुक्त नहीं लग रही थी। ऐसे समय में मोदू खाँ ने नृत्य एवं ठुमरी के साथ संगत करने योग्य शैली का निर्माण किया जिससे लखनऊ का बाज खुला हो गया। स्याही पर हाथ के पंजे का प्रयोग होने लगा एवं किनार की अपेक्षा लव का स्थान अधिक होने लगा। तिर के कायदों में 'ति' वर्ण तर्जनी से एवं 'ट' वर्ण मध्यमा एवं कनिष्ठा को जोड़कर आघात करने से निकाला गया, जो कि देहली बाज की विकास विधि के अनुसार विपरीत था। ठुमरी के साथ लग्गी एवं लड़ी के बजाने हेतु बोलों का निर्माण किया। इस बाज में कायदों की अपेक्षा, रेले, गत, गत–कायदा,

टुकड़े, परन एवं चक्करदार बोलों की रचना की गई। इस बाज के वादक नृत्य की कुशलतापूर्वक संगत करते थे एवं इस बाज को नचकरन बाज भी कहा गया। इस बाज में धिट–धिट, धागे तिट, ताके तिट, धिक, क–धाड़न, धाड़न, तकिट, धिरकिट तक धिरधिर किटतक, धिनगिन, धिनतक, तकधिन, धेतिरकिटतक, धिड़नग, आदि बोलों का प्रयोग अधिक होता है। लखनऊ बाज का परिचय निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा।

कायदा – 01

धागेतिट धागेतिरकिट धिनागिन धागेतिट । धागेनधा तिरकिटधिन धागेतिरकिट तिनाकिन।
X 2
ताकेतिट ताकेतिरकिट तिनाकिन ताकेतिट । धागेनधा तिरकिटधिन धागेतिरकिट धिनागिन। धा
0 3 **X**

गत कायदा

तकिटधा धेतिरकिरतक धिरधिरकिटतक तकिटधा ।
X
धिरधिरकिटतक धातिरकिटतक धिरधिरकिटतक तकिटधा ।
2
तकिटधा धेतिरकिरतक धिरधिरकिटतक तकिटधा ।
0
धिरधिरकिटतक धातिरकिटतक धिरधिरकिटतक तकिटधा । धा
3 **X**

गत

धिरधिकिटतकतकिटघा –तकधिरधिरकिटतक धातिरकिटतकदिगिननना–न –नगननातिरकिटतक।
धिरधिकिटतकतकिटघा –तकधिरधिरकिटतक धातिरकिटतकघिरघिरकत –घिरघिरकतघिरघिर। धा

टुकडा

धेतिरकिटतक ता कतघेघे दीं । नगघे– –ता धेतरा– –नधा–।
X **2**
धिंता कति टघेतिर किटतकतकिट । घाघेतिर किटतकतकिट धाघेतिर किटतकतकिट।
0 3
धा– कति टघेतिर किटतकतकिट । धाघेतिर किटतकतकिट धाघेतिर किटतकतकिट।
X **2**
धा– कति टघेतिर किटतकतकिट । धाघेतिर किटतकतकिट धाघेतिर किटतकतकिट। धा
0 3 **X**

इस टुकडे का प्रयोग नृत्यकारो ने भी किया है।

3.3.4 बनारस घराना – बनारस घराने की स्थापना लखनऊ घराने के मोदू खाँ के शिष्य राम सहाय के द्वारा की गई, अतः बनारस घराना भी लखनऊ घराने की देन है। मोदू खाँ की पत्नी पंजाब घराने के पखावज वादक की पुत्री थी, अतः राम सहाय को पंजाब घरानें की रचनाएं भी प्राप्त हुई थी जिससे बनारस घराने की वादन शैली में पखावज वादन शैली का प्रभाव दिखता है। राम सहाय के शिष्य जानकी सहाय, भाई एवं भतीजे थे जिन्होंने राम सहाय से तबले की शिक्षा प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त इनके शिष्य बैजू महाराज, रामशरण, भगत जी, प्रताप महाराज उर्फ परतप्पू जी थे जिनकी वंश एवं शिष्य परम्परा से बनारस घराने का विकास हुआ। जानकी सहाय के दो शिष्य गोकुल एवं

विश्वनाथ थे। विश्वनाथ के शिष्य भगवान प्रसाद एवं पुत्र बीरु मिश्र हुए। बीरु मिश्र ने अपने समय में तबला वादन में बहुत ख्याति प्राप्त की।

भैरो सहाय के शिष्य बलदेव सहाय थे। बलदेव सहाय के शिष्यों में बीक्कू जी, भगवती सहाय, कंठे महाराज एवं पुत्र दुर्गा सहाय उर्फ नन्दू सूरदास थे। इन सभी शिष्यों की अपनी शिष्य परम्परा थी। बिक्कू जी के पुत्र गामा जी एवं इनके पुत्र रंगनाथ मिश्र थे। रंगनाथ मिश्र ने बहुत समय तक लखनऊ के मेरिस कालेज, वर्तमान भातखण्डे संगीत संस्थान, लखनऊ में अपनी सेवाएं दी एवं अनेक शिष्य तैयार किए। भगवती सहाय की शिष्य परम्परा में इनके पुत्र शारदा सहाय एवं शिष्य मंगल सहाय एवं राम शंकर सहाय थे। कंठे महाराज ने अपने भतीजे किशन महाराज को दत्तक पुत्र स्वीकार किया था एवं किशन महाराज को तबला वादन में निपुण किया। कंठे महाराज के शिष्य शीतल प्रसाद मिश्र हैं जो भातखण्डे संगीत संस्थान से अवकाश प्राप्त हैं। किशन महाराज ने बनारस घराने की परम्परा का बहुत अधिक विकास किया। वर्तमान में इनके पुत्र पूरन महाराज एवं शिष्य कुमार बोस, सुखविन्दर नामधारी एवं तेज बहादुर निगम प्रख्यात तबला वादक हैं।

दुर्गासहाय उर्फ नन्दू सूरदास की परम्परा में श्याम लाल प्रसिद्ध तबला वादक थे। इनके प्रमुख शिष्य मधुकर गणेश गोडबोले एवं लालजी श्रीवास्तव ने इलाहाबाद एवं उसके आस पास के क्षेत्र में तबले का प्रचार–प्रसार किया। इनके प्रमुख शिष्यों में इनके पुत्र अजय किशोर एवं विपिन किशोर, गिरीश श्रीवास्तव, भुवन श्रीवास्तव, प्रभुदत्त बाजपेई एवं अनुपम राय हैं। भैरव प्रसाद भगत जी के प्रमुख शिष्य थे। भैरव प्रसाद के प्रमुख शिष्यों में अनोखे लाल, मौलवी मिश्र, महादेव मिश्र एवं महावीर भटट थे। अनोखे लाल अपने समय के बेजोड़ तबला वादक थे एवं इन्होंने कठिन परिश्रम से तीनताल का ठेका अति दुत गति में साधा था। इनको ना धिं धिं ना का जादूगर कहा जाता है। अनोखे लाल के पुत्र राम जी मिश्र में अपने पिता के सभी गुण थे। अनोखे लाल की शिष्य परम्परा के नागेश्वर प्रसाद मिश्र उर्फ पांचू महाराज, ईश्वर लाल, छोटे लाल मिश्र, महापुरुष मिश्र एवं काशी नाथ मिश्र की बनारस घराने के प्रतिष्ठित तबला वादको में गणना की जाती है। प्रताप महाराज उर्फ परतप्पूजी के पुत्र जगन्नाथ थे। जगन्नाथ के दो पुत्र शिव सुन्दर एवं बाचा मिश्र हुए। बाचा मिश्र के पुत्र सामता प्रसाद थे जो गुदई महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुदई महाराज ने तबला एकल वादन, नृत्य, वाद्य की संगति में बहुत ख्याति अर्जित की एवं इनको फिल्मों में विशेष तबला वादन हेतु आमंत्रित किया गया था। इनके दो पुत्र कुमार लाल एवं कैलाश एवं प्रमुख शिष्य सत्यनारायण वशिष्ठ एवं जे मेंसी थे। गुदई महाराज के तबला वादन शैली से अन्य घरानों के कलाकार भी प्रभावित रहे। निम्न तालिका से बनारस घराने की परम्परा स्पष्ट होगी।

बनारस घराना

राम सहाय

जानकी सहाय (भाई)	भैरो सहाय (भतीजा)	बैजु महाराज	रामशरण	भगत जी	प्रताप महाराज (उर्फ परतप्पूजी)

जानकी सहाय

गोकुल(शिष्य)	विश्वनाथ
	भगवान प्रसाद(शिष्य)
	बीरु मिश्र(पुत्र)

भैरो सहाय

बलदेव सहाय

बिक्कू जी | भगवती सहाय | कंठे महाराज | दुर्गा सहाय (पुत्र)

गामा जी(पुत्र)

रंगनाथ मिश्र(पुत्र)

भगवती सहाय

शारदा सहाय(पुत्र) | मंगला सहाय | रामशंकर सहाय

कंठे महाराज

किशन महाराज(दत्तक पुत्र) | शीतल मिश्र(शिष्य)

पुरन महराज(पुत्र) | तेज बहादुर निगम | कुमार बोष | सुखविन्दर नामधारी

दुर्गा सहाय(उर्फ नन्दू सूरदास)

श्याम लाल(शिष्य)

मधुकर गणेश गोडबोले | लालजी श्रीवास्तव(इलाहाबाद)

विपिन किशोर (पुत्र) | अजय किशोर (पुत्र) | गिरीश श्रीवास्तव | भुवन श्रीवास्तव | प्रभु दत्त बजपाई

भगत जी

भैरव जी

अनोखे लाल (शिष्य) | मौलवी मिश्र (शिष्य) | महादेव मिश्र (शिष्य) | महावीर भटट (शिष्य)

रामजी मिश्र (पुत्र) | बागेश्वर मिश्र (शिष्य) | ईश्वरलाल (शिष्य) | छोटेलाल (शिष्य) | महापुरुषमिश्र (शिष्य) | काशीनाथ (शिष्य)

प्रताप महाराज उर्फ परतथूजी
|
जगन्नाथ(पुत्र)
|
शिवसुन्दर(पुत्र) बाचा मिश्र(पुत्र)
|
सामता प्रसाद(पुत्र)

सामता प्रसाद
|
कुमार लाल(पुत्र) कैलाश(पुत्र) जे मेंसी सत्यनारायण वशिष्ठ

3.3.4.1 बनारस घराने की वादन शैली अथवा बाज – बनारस घराने की वादन शैली अथवा बाज पर पखावज की वादन शैली का प्रभाव है। यह बाज खुला एवं जोरदार है। किनार की अपेक्षा लव का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस बाज में कायदों का अधिक महत्व नहीं है। यद्यपि इस बाज में रचनाएं, कायदे की भांति भी हैं परन्तु इनका विकास बनारस बाज के अनुसार किया जाता है। चाले, बांट, परन, पडार, गत एवं फरद इस बाज की विशेषता है। पखावज की भांति लम्बी–लम्बी परन एवं पडार बनारस बाज में बहुत अधिक प्रयोग की जाती हैं। धिर धिर किटतक रेला भी बनारस बाज का मुख्य आकर्षण है। पखावज पर प्रयोग होने वाले बोल जैसे धेट धेट, कडधातिट, धेत धेक, कता–न धडा–न, तिरकता, गदिगिन बनारस बाज में प्रयोग किए जाते हैं। इसमें पेशकार का प्रयोग नहीं किया जाता है। तबला वादन का आरम्भ दो–तीन आवृति की उठान से किया जाता है। पेशकार के स्थान पर बोलों की बांट बजाते हैं। तीनताल में निम्न उदाहरणों से बनारस बाज का परिचय प्राप्त होगा।

<u>कायदा</u>

धीक धिना तिरकिट धिना। धागे नधि कति नाना।
x **2**
तीक तिना तिरकिट तिना। धागे नधि कधि नाना। धा
0 3 **x**

<u>चाल</u>

धा – धि कधि नाती। धाती कधि – ति नाती।
x **2**
ता –ति कति नाती। धाती कधि – धि नाती। धा
0 3 **x**

<u>रेला</u>

धातिर किटतक धिरधिर किटतक। धातिर किटतक तूना किटतक।
x **2**
तातिर किटतक तिरतिर किटतक। धातिर किटतक धिना किटतक। धा
0 3 **x**

<u>गत कायदा</u>

धिरधिर धिरधिर घिडनग दिनतक । धातिर घिडनग धिरधिर घिडनग।
x **2**
धिरधिर घिडनग दिनतक धिरधिर । घिडनग धातिर घिडनग तिनतक।
0 3

तिरतिर तिरतिर किडनक तिनतक। तातिर किडनक तिरतिर किडनक।
x **2**
धिरधिर घिडनग दिनतक धिरधिर। घिडनग धातिर घिडनग दिनतक। धा
0 3 **x**

3.3.5 पंजाब घराना – पखावज घराने की परम्परा पंजाब में भवानी दास अथवा भवानी सिंह पखावजी के शिष्य हददू खाँ, ताज खाँ डेरेदार एवं मियां कादिर बख्श प्रथम से आरम्भ हुई। परन्तु बाद में पखावज घराने की परम्परा मियां कादिर बख्श के पौत्र मियां फकीर बख्श से तबला वादन में परिवर्तित हुई। अतः पंजाब में तबले के घराने की स्थापना मियां फकीर बख्श के द्वारा हुई। मियां फकीर बख्श ने अपने पुत्र कादिर बख्श द्वितीय, शिष्य करम इलाही फिरोज खाँ (लाहौर वाले), मीर बख्श एवं बाबा मलंग को तबला वादन की शिक्षा देकर पंजाब के तबले घराने को स्थापित किया। इन शिष्यों द्वारा इस परम्परा को आगे बढाया गया। पंजाब घराने के विकास में मियां कादिर बख्श द्वितीय का विशेष योगदान है। मियां कादिर बख्श द्वितीय के प्रमुख शिष्यों में शौकत हुसैन, महबूब बख्श, अल्लाधित्ता लाहौर, अल्ला रक्खा, लक्ष्मण सिंह एवं भतीजे अख्तर हुसैन हुए। अल्ला रक्खा ने भारत में एवं अल्लाधित्ता ने पाकिस्तान में तबला वादन में बहुत प्रतिष्ठा पाई। वर्तमान में अल्ला रक्खा के पुत्र जाकिर हुसैन, फजल कुरैशी एवं तारिक कुरैशी पंजाब घराने के प्रतिनिधि कलाकार हैं। अल्ला रक्खा के शिष्यों में सुबोध मुखर्जी, विनायक खाँ एवं अब्दुल सत्तार हैं। अब्दुल सत्तार ने गुलाम अली (गजल गायक) के साथ बहुत नाम कमाया।

मीर बख्श घीलवाले की परम्परा में बहादुर सिंह एवं महताब सिंह हुए। मीर बख्श ने बहुत रचनाएं बनाई। इनका तखल्लुस तकिटधिंधिं धा था एवं इनकी रचनाओं में यह बोल अवश्य आता था। बाबा मलंग की परम्परा में शौकत हुसैन एवं बहादुर सिंह हुए। शौकत हुसैन ने कादिर बख्श से भी शिक्षा प्राप्त की थी। बहादुर सिंह द्वारा पूरे पंजाब में तबले की परम्परा को फैलाया गया। इनके शिष्यों में रनबोध सिंह(लुधियाना), लक्ष्मण सिंह(जालन्धर), रमाकान्त सिंह(जालन्धर), नरेन्द्र सिंह (चन्डीगढ) एवं दिलीप सिंह हुए। लक्ष्मण सिंह आकाशवाणी जालन्धर में कार्यरत रहे एवं इन्होंने अनेक शिष्य तैयार किए जिसमें इनके दामाद पवन कुमार, मनमोहन शर्मा एवं काला राम हैं।

पंजाब घराना
मियां कादिर बख्श(प्रथम)
|
मियां हुसैन बख्श
|
मियां फकीर बख्श(पुत्र)
|

करम इलाही	फिरोज खाँ (लाहोर वाले)	मीर बख्श घीलवाले	मियां कादिर बख्श(द्वितीय) (पुत्र)	बाबा मलंग

मियां कादिर बख्श (द्वितीय)(पुत्र)
|

महाराज टीकमगढ	शौकत हुसैन	मेहबूब बख्श	अल्लाधिता	अल्लारक्खा	अख्तर हुसैन(भतीजा)	लक्ष्मण सिंह

अल्ला रक्खा

जाकिर हुसैन (पुत्र)	फजल कुरैशी (पुत्र)	तारिक कुरैशी	अब्दुल सत्तार	सुबोध मुखर्जी	विनायक खां

मीर बख्श घीलवाले

बहादुर सिंह	महताब सिंह

बाबा मलंग

शौकत हुसैन	बहादुर सिंह

बहादुर सिंह

रनबोध सिंह (लुधियाना)	कृपालसिंह	लक्ष्मण सिंह (जालन्धर)	रमाकान्त सिंह (जालन्धर)	नरेन्द्र सिंह (चण्डीगढ)	दिलीप सिंह

लक्ष्मण सिंह (जालन्धर)

पवन कुमार(दामाद)	मनमोहन शर्मा	कालाराम

3.3.5.1 पंजाब घराने की वादन शैली अथवा बाज – पंजाब घराने की वादन शैली अथवा बाज, पखावज बाज से ही उत्पन्न हुई। तबले के अन्य बाज का सम्बन्ध मूल रुप से देहली से रहा परन्तु पंजाब का तबले का बाज, पखावज एवं पंजाब के लोक अवनद्य वाद्य दुक्कड के आधार पर स्वतंत्र रुप से विकसित हुआ। पखावज की भांति यह बाज जोरदार एवं खुला है। तबले पर चारों अगुंलियो का प्रयोग एवं थाप का प्रयोग भी किया जाता है। लयकारी का प्रयोग इस बाज में अधिक होता है। गणित के आधार की विभिन्न प्रकार की तिहाईयां इस बाज की विशेषता है। इस बाज में कायदे का प्रचार कम है। रेले एवं गतें इस बाज की विशेषता है। तिरकिटतक बोल का रेला अल्ला रक्खा के वादन की विशेषता रही है। कायदे भी रेले की तरह के होते हैं। इस बाज में धड–न, तगे–न तकिट, धिरकिटतक, धिरधिरके, तिकिटतक, किटतक, तिकिट, धुमकिटतक बोलों का प्रयोग विशेषकर पाया जाता है। चक्रदार रचनाओं के विभिन्न प्रकार भी इस बाज की विशेषता है एवं अप्रचलित तालें जैसे नौमात्रा, ग्यारह मात्रा, तेरह मात्रा आदि तालें भी इस बाज में बजाई जाती हैं। गणित एवं लयकारी के प्रयोग से यह बाज क्लिष्ट है। बोलों को बोलने में इस बाज में यहां की पंजाबी भाषा का प्रभाव है जैसे धाती को धात, धाधा का धाडा, धिर धिर को धेरधेर बोला जाता है। यह बाज निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

कायदा

धातिरकिटतक तिरकिटतकतिर किटतकतिरकिट धिनागिन।
x
धातीधागे धिनागिन धातीधागे तिनाकिन।
2
तातिरकिटतक तिरकिटतकतिर किटतकतिरकिट धिनागिन।
0
धातीधागे धिनागिन धातीधागे धिनागिन। धा
3 **x**

टुकडा – झपताल

ताकिटधि किटधिट। धिटकता गदीगिन नगनग। ना–कता धिटकता। तगे–न धिटकता धा–कता।

x 2 0 3

धा–कता धिटकता। तगे–न धिटकता धा–कता। धा–कता धिटकता। तगे–न धिटकता धा–कता। धी

x 2 0 3 x

3.3.6 फर्रुक्खाबाद घराना – सिद्धार खाँ के पौत्र बख्शू खाँ जिन्होंने लखनऊ घराने की वादन शैली के विकास में अपना योगदान दिया था, ने अपकी लडकी की शादी फर्रूक्खाबाद के विलायत अली से की थी। विलायत अली ने लगभग पांच बार हज यात्रा की थी एवं आप धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इसी कारण इनके नाम के आगे हाजी जुड गया एवं ये हाजी विलायत अली के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनको दहेज में लखनऊ बाज का तबला भेंट में मिला था, जिसमें मुख्य रुप से गतें थी। इसी लखनऊ घराने से मिले तबले के आधार पर आपने एक नवीन शैली को जन्म दिया। इनकी वंश परम्परा एवं शिष्य परम्परा ने इस शैली का विकास किया जो कि फर्रूखाबाद घराने के नाम से स्थापित हुआ। हाजी विलायत अली के दो पुत्र निसार अली एवं हुसैन अली हुए जिन्होंने शिष्यों के माध्यम से फर्रूक्खाबाद घराने की परम्परा को आगे बढाया। इनके प्रमुख शिष्य मुनीर खाँ थे जिनके शिष्य अमीर हुसेन (भान्जे), गुलाम हुसैन, शमसुद्दीन खाँ, हबीबूद्दीन खाँ एवं अहमद जान थिरकवा ने तबला वादन में ख्याति प्राप्त की। अहमद जान थिरकवा को भारत सरकार द्वारा पदम भूषण से भी अलंकृत किया गया। अमीर हुसैन खाँ के प्रमुख शिष्यों में निखिल घोष, शेर खाँ (नागपुर), माणिक राव पसेपटकर एवं चांद खाँ हुए। अमीर हुसैन मुख्य रुप से बम्बई में रहे। वर्तमान में इनके पुत्र पाया खाँ इस परम्परा को आगे बढा रहे हैं। अहमद जान थिरकवा के नाम से ऐसा कोई विरला ही होगा जो कि परिचित न हो। इनकी वंश परम्परा में इनके छोटे भाई मोहम्मद जान, दामाद अहमद अली, भतीजा जमीर अहमद हुए एवं प्रमुख शिष्यों में प्रेम बल्लभ, रोजवेल लायल, निखिल घोष एवं अता हुसैन (रामपुर) हैं। मोहम्मद जान के पुत्र रशीद मुस्तफा वर्तमान में तबला वादन के क्षेत्र में प्रसिद्धि पा रहे हैं। अहमद जान थिरकवा के शिष्यों ने भी इस परम्परा को आगे बढाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जिनमें मुख्य रुप से प्रेम बल्लभ एवं पं0 निखिल घोष हैं।

हाजी विलायत अली के दामाद हुसैन बख्श थे। इनकी परम्परा को अल्लादिया खाँ ने हैदराबाद में प्रचारित किया। इनके दो पुत्र मोहम्मद खाँ एवं छोटे खाँ ने हैदराबाद में शिष्य परम्परा को बढाया जिसमें शेख दाउद ने विशेष रुप से तबला वादन में ख्याति अर्जित की एवं शेख दाउद ने भी कई शिष्य तैयार किए।

करम इतल भी हाजी विलायत अली के प्रमुख शिष्यो में से थे। ये उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में आकर बस गए थे। इनके पुत्र फैयाज खाँ ने इस क्षेत्र में फर्रूखाबाद घराने को स्थापित किया एवं इनसे अहमद जान थिरकवा, हबीबूदीन खाँ एवं अजीम बख्श ने शिक्षा प्राप्त की। हबीबूदीन खाँ बाद में अजराडा घराने के प्रतिनिधि कलाकार के रुप में स्थापित हुए। अजीम बख्श के पुत्र निजामुद्दीन हुए।

नन्हें खाँ भी हाजी विलायत अली के प्रमुख शिष्यो में से थे। नन्हें खाँ के पुत्र मसीदुल्लाह खाँ एवं इनके पुत्र मसीत खाँ हुए जो मुख्य रुप से कलकत्ते में रहे। मसीत खाँ के पुत्र करामतुल्ला खाँ एवं शिष्य ज्ञान प्रकाश घोष, कन्हाई दत्त, आ.सी. बोराल, मुन्ने खाँ एवं हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी हुए। मुन्ने खाँ लखनऊ के मेरिस कालेज में तबला शिक्षक के पद पर रहे एवं यही रह कर इन्होंने शिष्यों के माध्यम से फर्रूखाबाद घराने की परम्परा को आगे बढाया। बांकि सभी शिष्यों ने बंगाल में ही इस परम्परा का विकास किया। वर्तमान में करामतुल्ला के पुत्र साबिर तबला वादन में श्रेष्ठ तबला वादक के रुप में प्रतिष्ठित हैं। फर्रूखाबाद घराने की तालिका के माध्यम से आप इस घराने के विकास क्रम को समझेंगे।

हाजी विलायत अली

निसार हुसैन अली(पुत्र), हुसैन अली (पुत्र), करमइतल बख्श, चूडियाइमाम बख्श, नन्नेखाँ, मुबारक अली, सलारी मियां

चूडियाइमाम बख्श → हैदर बख्श(पुत्र) → बन्दे हसन(पुत्र)

मुबारक अली → जहागीर खाँ(इन्दौर)

निसार हुसैन अली

अमीर हुसैन (भान्जे), गुलाम हुसैन (भतीजा), शमसुदीन खाँ, हबीबूद्दीन खाँ (इनकी शिष्य परम्परा अजराडा घराने में देखें), अहमदजान थिरकवा

अमीर हुसैन

पाया खाँ (पुत्र), निखिल घोष, शेख खाँ (नागपुर), माणिकराव पोपटकर, चांद खाँ (कलकत्ता)

अहमद जान थिरकवा

मोहम्मदजान (भाई), निखिल अहमद अली (दामाद), प्रेम बल्लभ, जमीर अहमद (भतीजा), रोजवेल लायल, अता हुसैन

मोहम्मदजान (भाई) → रशीद मुस्तफा

हुसैन बख्श

अल्लादिया खाँ

मोहम्मद खाँ(पुत्र), छोटे खाँ(पुत्र)

मोहम्मद खाँ(पुत्र) → शेख दाउद(शिष्य परम्परा लखनऊ घराने में देखें)

करम इतल

फैयाज खाँ(मुरादाबाद)(पुत्र)

अहमद जान थिरकवा, शमसुदीन खाँ, अजीम बख्श

अजीम बख्श → निजामुदीन खाँ(पुत्र)

नन्ने खाँ

मसीमुल्लाह खाँ(पुत्र) → मसीत खाँ(पुत्र)

मसीत खाँ

करामतुल्ला खाँ(पुत्र)	ज्ञानप्रकाश घोष	कन्हाईदत्त	आ.सी. बेराल	मुन्ने खाँ (लखनऊ)	हिरेन्दकिशोर राय चौधरी
साबिर खाँ(पुत्र)					

3.3.6.1 फर्रूक्खाबाद घराने की वादन शैली अथवा बाज – फर्रूक्खाबाद घराने की स्थापना प्रारम्भ में लखनऊ घराने की एक शाखा के रुप में हुई थी। परन्तु लखनऊ बाज के ऊपर नृत्य के प्रभाव को फर्रूक्खाबाद घराने की वादन शैली में समाप्त कर, शुद्ध तबले के बोलों के आधार पर फर्रूक्खाबाद बाज को विकसित किया गया। इस बाज की विशेषता यहां के गत कायदें हैं। रेले भी इस बाज में बजाए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के छन्दों एवं चालों को रौ के रुप में बजाने का आरम्भ इसी घराने में हुआ। अहमद जान थिरकवा तो देहली एवं अजराडा के कायदों की रौ बजाने में सिद्धहस्त थे। विभिन्न यति भेद के अनुसार भी गतों का निर्माण इस बाज की विशेषता है। फर्रूक्खाबाद बाज को अन्य घरानों के कलाकारों द्वारा भी अपनाया गया है एवं हाजी विलायत अली की गतों को नाम लेकर अपने एकल वादन में बड़े गर्व के साथ प्रस्तुत करते हैं। इस बाज में विशेषकर धिर धिर किटतक, घडा–न, घिनगिन, तक तक, धेरा आदि बोलों का प्रयोग पाया जाता है। एक ही गत को विभिन्न लय के दर्जे बनाकर प्रस्तुत करना भी इस बाज की विशेषता है। मुख्य रुप से यह बाज रौ एवं गतों के लिए प्रसिद्ध है। उदाहरण स्वरुप फर्रूक्खाबाद बाज की कुछ गतों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिससे फर्रूक्खाबाद बाज का परिचय प्राप्त हेगा।

गत कायदा 1

तकटधा धिरधिरकिटतक धिरधिरकिटतक दीगिनधा ।
x
किडनकनातिट किडनकतिरकिटतक धिरधिरकिटतक दीगिनधा ।
2
तकटता तिरतिरकिटतक तिरतिरकिटतक तीकिनता ।
0
किडनकनातिट किडनकतिरकिटतक धिरधिरकिटतक दीगिनधा । धा
3 **x**

गत कायदा 2

धिनगिन धागेत्रक धिनगिन तकतक । धिनगिन धागेत्रक धिनगिन धा।
x **2**
तकधिन गिनधागे धिनगिन तकतक । धिनगिन धागेत्रक धिनगिन ता।
0 3
तिनकिन ताकेत्रक तिनकिन तकतक। तिनकिन ताकेत्रक तिनकिन ता।
x **2**
तकधिन गिनधागे धिनगिन तकतक। धिनगिन धागेत्रक धिनगिन धा। धा
0 3 **x**

गत

धिनघडा–नधि धाघेघेनगकिन धिनगिनतकधिन धागेत्रकधिनाकता।
x
तकटतकटधिन धागेत्रकतूनाकता तकटतकटधिन धागेत्रकधिनाकता।
2

धा–नधिकिटतकटधिकिट धात्रकधितिटकतगदिगिन धा– किटतक ता–किटतक।
0
ताकिटतकता–नता–न धा–किटतकता–किटतक ता–नता–नधा–किटतक ताकिटतकता–नता–न। धा
3 **x**

3.4 तबले की वादन शैलीयों का तुलनात्मक अध्ययन

तबले की वादन शैली का जन्म देहली बाज में हुआ। देहली बाज बंद बाज था। इसमें तबले पर हाथ साधने के लिए कायदों का निर्माण किया गया जो कि बाद में देहली घराने की शैली ही बन गई। चांट का प्रयोग एवं स्याही पर तिरकिट बोल की निकास के लिए पहली दो अंगुली का ही प्रयोग किया गया जिससे यह बाज बन्द एवं मधुर हो गया। देहली बाज के कायदे चतस्त्र जाति के होते हैं। यह बाज मुख्य रुप से पेशकार एवं कायदे का बाज है यद्यपि बाद में वादन शैली के अनुरुप रेला, गत एवं टुकडा भी निर्मित किए गए। देहली घराने से ही एक शाखा अजराडा घराने की निकली। देहली बाज का आधार लेते हुए अजराडा बाज का प्रयोग अधिक किया गया एवं कायदों की रचना तिस्र जाति में की गई। बोलों की निकास में परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु बाएं के प्रयोग से कायदों का मौलिक रुप निकल आया जिससे अजराडा बाज स्थापित हुआ। तिस्र जाति के कायदों से अजराडा बाज देहली बाज से एकदम अलग से पहचाना जाता है।

बाज की दृष्टि से संगीत जगत में तबले के दो बाज पश्चिम बाज एवं पूरब बाज प्रचलित हैं। पश्चिम बाज में देहली एवं अजराडा तथा पूरब बाज में लखनऊ बाज, फर्रूखाबाद बाज एवं बनारस बाज हैं। पंजाब बाज का अपना अस्तित्व है। देहली बाज से लखनऊ बाज का जन्म हुआ। देहली बाज में लखनऊ क्षेत्र की सांगीतिक आवश्यकता के अनुसार लखनऊ बाज का जन्म हुआ। लखनऊ में नृत्य का अधिक प्रचलन था। वाजिद अली शाह जो कि लखनऊ के नवाब थे संगीत के प्रेमी थे एवं स्वयं नृत्यकार भी थे। नृत्य की संगीत के लिए देहली का बाज जो कि बंद बाज था अधिक उपयुक्त नहीं लगा, अतः लखनऊ का बाज खुला हो गया। तिट बोल की निकासी देहली के अपेक्षा उल्टी हो गई जिससे तिट ने तेट का रुप ले लिया एवं जोरदार बोल हो गया। तिरकिट में भी सभी अंगुलियों का प्रयोग किया गया। हथेली का प्रयोग भी धिरधिर बोल की निकास के लिए किया जाने लगा जो कि देहली बाज में नहीं होता था। इस प्रकार देहली का बाज लखनऊ में खुला एवं जोरदार हो गया। नृत्य के अधिक प्रभाव के कारण लखनऊ बाज को नचकरन बाज भी कहा गया।

पूरब के लखनऊ घराने से ही फर्रूखाबाद बाज एवं बनारस बाज ने जन्म लिया। लखनऊ बाज की रचनाओं में नृत्य का प्रभाव था अतः फर्रूखाबाद बाज को शुद्ध रुप से तबला वादन शैली पर आधारित किया गया। लखनऊ बाज के स्वतंत्र रेले की अपेक्षा फर्रूखाबाद बाज में रौ बजाने की तकनीक विकसित की गई। रौ, रेले की भांति ही दुत लय में धारा प्रवाह से बजाई जाती है। रौ कायदों के स्वरुप एवं चालों के स्वरुप का आधार लेकर रेले में प्रयुक्त होने वाले बोलों का प्रयोग किया जाता है। रौ का वजन कायदे एवं चाल के वजन के स्वरुप होता है। तबले के बोलों का आधार लेकर गतों का निर्माण किया गया। लखनऊ बाज में कायदा, रेला, टुकडे एवं गतें हैं जबकि फर्रूखाबाद बाज की विशेषता इसकी रौ एवं गते हैं। फर्रूखाबाद बाज की गतों में लय एवं यति का प्रयोग पाया जाता है। लखनऊ बाज की एवं फर्रूखाबाद बाज की गतों को उनकी रचना से अलग–अलग पहचाना जाता है। पूरब की अन्य शाखा बनारस बाज भी लखनऊ की भांति खुला है परन्तु लखनऊ की अपेक्षा अधिक जोरदार है। बनारस में भी नृत्य प्रचलित था एवं नृत्य का एक घराना बनारस घराने के नाम से विख्यात रहा। अतः बनारस बाज का विकास भी नृत्य के परिवेश में हुआ। बनारस में ठुमरी, कजरी, चैती आदि गाने की परम्परा भी रही है अतः बनारस के बाज में तबले पर बजने वाली लग्गी एवं लडी भी जुड गई। नृत्य में प्रयोग होने वाली देवी देवताओ की स्तुति को भी बनारस बाज में तबले पर बजाया जाने लगा एवं बनारस बाज का अंग बन गया, जो कि पूरब के अन्य बाज लखनऊ एवं फर्रूखाबाद में नही था। बनारस बाज में पखावज की रचनाओं को भी बजाया जाता है। कहरवा में बजाई जाने वाली लग्गी

के स्वरूप की बांट एवं चाल बनारस बाज की विशेषता है जो कि पूरब के अन्य बाज में नहीं है। लम्बी–लम्बी परने, पडार एवं एक विशिष्ट प्रकार की गत जिसे फरद कहा जाता है, बनारस बाज की मुख्य विशेषता है। इन सभी से बनारस बाज पूरब के अन्य बाज लखनऊ एवं फर्रूखाबाद बाज से भिन्न है एवं अपनी अलग पहचान रखता है।

पंजाब बाज का सम्बन्ध देहली बाज से नहीं रहा बल्कि पखावज वादन शैली के आधार पर ही इस बाज का विकास हुआ, अतः यह अन्य सभी बाजों से भिन्न है। इसमें देहली, अजराडा या लखनऊ बाज की भांति कायदे नहीं होते परन्तु इसके कायदे रेले की तरह होते हैं। बनारस बाज की भांति इसमें पखावज की गतों को ही तबले पर बजाया जाता है। पंजाब घराने के उस्तादों द्वारा तबले के बोलों से निर्मित गतें भी बनाई गई जो अन्य घरानो की गतों से भिन्न है। घिरकिट एवं धुमकिट बोलों का प्रयोग पंजाब बाज में अधिक है जो कि तबले के अन्य बाजों में नहीं के बराबर है। कठिन लयकारीयां एवं विभिन्न प्रकार की तिहाईयों का प्रयोग इस बाज की विशेषता है जो अन्य बाजों में नहीं पाई जाती। बनारस बाज से केवल यह समानता है कि यह पंजाब बाज की तरह खुला एवं जोरदार है।

वर्तमान समय में आवागमन के साधन, टी.वी. एवं अन्य ऑडिया–विडियो यंत्रो के माध्यम से संगीत सुनने की सुविधा उपलब्ध है, इस कारण कोई भी वादन शैली अपने मौलिक स्वरुपों में स्थापित रहे, यह कठिन हो रहा है। वादन शैलियों का प्रभाव एक दूसरे की वादन शैली पर पडना स्वाभाविक है एवं कलाकार भी विभिन्न शैलियों से समन्वय करने की चेष्टा भी करते हैं। एक ही कलाकार कई घरानों से शिक्षा लेता है जो कि पहले के समय में भी प्रचलित था। कई वादन शैलियों का अध्ययन कर कलाकार अपनी मौलिक वादन शैली विकसित करता था। देहली बाज एवं अजराडा बाज के कलाकार संयुक्त रूप से रेले, रौ एवं गतों का प्रयोग करते हैं जो पहले विशेष रूप से लखनऊ अथवा फर्रूखाबाद बाज में होता था। उस्ताद अहमज जान थिरकवा ने देहली, अजराडा एवं फर्रूखाबाद तीनों का सुन्दर समन्वय कर अपनी व्यक्तिगत शैली बनाई थी। पुराने कई उस्तादों ने लखनऊ, देहली एवं फर्रूखाबाद घराने से शिक्षा प्राप्त की थी। बनारस घराने के कलाकार केवल बनारस बाज का ही प्रयोग करते हैं यद्यपि बनारस घराने के सामता प्रसाद ने देहली बाज के कायदे एवं फर्रूखाबाद की गतों को बजाने में संकोच नहीं किया। वर्तमान पंजाब घराने के उस्ताद जाकिर हुसैन भी किसी भी अन्य बाज की रचना का प्रयोग करने में परहेज नहीं करते हैं। वर्तमान कलाकार वादन शैलियों का गुलदस्ता बनाकर श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करते हैं एवं सफल सिद्ध होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. तबले के घरानों एवं प्रत्येक घराने के संस्थापक का नाम लिखिए।
2. देहली बाज को अन्य किस नाम से जाना जाता है?
3. देहली बाज किस रचना के लिए प्रसिद्ध है?
4. अजराडा बाज के कायदे किस जाति के होते हैं?
5. लखनऊ बाज को अन्य किस नाम से जाना जाता है?
6. फर्रूखाबाद बाज किस रचना के लिए प्रसिद्ध है?
7. बनारस बाज की दो रचनाओं के नाम बताइए जो अन्य किसी बाज में नहीं होती है।
8. पंजाब बाज के किसी वर्तमान कलाकार का नाम लिखिए।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप तबले के घराने एवं उनकी वादन शैली के विषय में जान चुके होंगे, जिससे आप तबला वादन सुनकर घराने को पहचान सकेंगे। घरानों के अध्ययन में आपने देखा कि एक ही उस्ताद ने कई घरानो से शिक्षा प्राप्त की एवं अपनी व्यक्तिगत शैली का निर्माण कर संगीत जगत में अपनी पहचान बनाई, विशेषकर ऐसे ही कलाकार शिखर पर रहे हैं। इस इकाई में विभिन्न घरानों की वादन शैली का तुलनात्मक अध्ययन एवं प्रत्येक घराने की उपयोगिता पर प्रकाश

डाला गया है जिससे आप वादन शैली के आधार पर घराने को अलग–अलग कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अपनी रुचि के अनुसार तबला वादन में अपने लिए बाज का चयन कर सकेंगे जो कि आप की भविष्य की विशेष शिक्षा के लिए सहयोगी होगा।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **घराना – संस्थापक**
   - देहली – सिद्धार खाँ
   - अजराडा – कल्लू खाँ एवं मीरु खाँ
   - लखनऊ – मोदू खाँ एवं बख्शू खाँ
   - फर्रूखाबाद – हाजी विलायत अली
   - बनारस – राम सहाय
   - पंजाब – मियां फकीर बख्श
2. किनार का बाज
3. कायदा
4. तिस्त्र
5. नचकरन बाज
6. गत
7. फरद एवं पडार
8. उ0 जाकिर हुसैन

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिस्त्री, आबान ई0, पखावज एवं तबले के घराने एवं परम्परा।
2. शुक्ला, योगमाया, तबले का उद्‌गम, विकास और वादन शैलियां।
3. सेन, अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तबले के घरानों एवं उनकी वादन शैली के विषय में लिखिए।
2. तबले की विभिन्न वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 1 – ताल के दस प्राण (काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति व प्रस्तार) का संक्षिप्त अध्ययन।

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 ताल के दस प्राण
1.4 काल
1.5 मार्ग
1.6 क्रिया
1.7 अंग
1.8 ग्रह
1.9 जाति
1.10 कला
1.11 लय
1.11.1 लयकारी
1.12 यति
1.13 प्रस्तार
1.14 सारांश
1.15 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
1.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0टी0–201) के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप भारतीय संगीत के इतिहास(प्राचीन काल से मध्यकाल तक) के विषय में जान गए होंगे। आप तबले की रचनाओं जैसे लय, लयकारी, परन, गत, चक्करदार, नौहक्का को भी समझ चुके होंगे। आप तबले के विभिन्न घरानों एवं इनकी वादन शैलियों के विषय में जान गए हैं।

इस इकाई में ताल के प्राण को विस्तार से समझाया गया है। ताल को साकार रूप में स्थापित करने एवं ताल को जीवन देने के कारण ताल के मूल तत्वों को प्राण कहा गया। इस इकाई के माध्यम से आप प्रत्येक प्राण का मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे तथा साथ वर्तमान प्रचलित तालिपि के सन्दर्भ भी जानेगे। ताल के दस प्राण की वर्तमान में उपयोगिता के विषय में भी इस इकाई में चर्चा की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ताल के प्राणों को समझ सकेंगे। आप ताल पद्धति में इनके महत्व से भी परिचित हो सकेंगे। आप वर्तमान में इनकी उपयोगिता को भी जान सकेंगे। इससे आप को प्राचीन ताल पद्धति तथा उसके व्यवहार के विषय में भी ज्ञान हो जाएगा तथा विभिन्न प्रकार की बन्दिशों की रचना हेतु प्रेरित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. ताल के दस प्राणों को जान सकेंगे।
2. मार्गी तथा देशी तालों के व्यवहार को जान सकेंगे।
3. प्रत्येक प्राण की उपयोगिता को मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में समझ सकेंगे।
4. वर्तमान ताल पद्धति में दस प्राणों की उपयोगिता समझ सकेंगे।

1.3 ताल के दस प्राण

संगीत की प्रतिष्ठा ताल पर होती है अर्थात संगीत का आधार ताल ही है तथा ताल का आधार प्राचीन संगीत के ऋषियों द्वारा स्थापित तत्व हैं। ये तत्व ही ताल के प्राण हैं जो कि दस है। जिस प्रकार मानव में चेतन तथा अचेतन में प्राण ही है जो मानव को गति प्रदान करता है, प्राण निकल जाने पर मानव शरीर का भी अन्त हो जाता है। अतः प्राण तत्व मानव जीवन के लिए आवश्यक तत्व है। उसी प्रकार ताल हेतु भी प्राण आवश्यक तत्व है। प्राचीन भारतीय परम्पराओं के आधार पर मानव में निहित प्राण के दस भेद हैं। इसी से प्रेरित होकर ताल हेतु भी दस प्राण निश्चित किए गए। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में एला प्रबन्ध के अन्तर्गत एला में पदों के दस प्राण का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार भारतीय ऋषियों द्वारा भारतीय ताल के तत्वों को भारतीय योग दर्शन तथा अध्यात्म से जोड़ा गया जिससे संगीत के प्रति आस्था एवं श्रद्धा बने एवं संगती में पवित्रता बनी रहे।

भरत ने ताल के तत्वों को प्राण न कह कर ताल के तत्व के रूप में प्रस्तुत किया। भरत ने इन तत्वों की संख्या आठ बताई जिसके अनुसार काल, मार्ग, क्रिया, काल अवयव, पाणि, ताल भेद, कला एवं यति हैं। संगीत मकरद में सर्वप्रथम ताल के दस प्राणों की चर्चा निम्न श्लोक के माध्यम से की की गई :–

'' काल मार्ग क्रियांगाणि ग्रहोजातिः कला लयः
यति प्रस्तारकश्चेति तालप्राणा दश स्मृताः।।''

इसके अनुसार ताल के दस प्राण काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति तथा प्रस्तार।

भरत ने अंग नाम से कोई चर्चा नहीं की बल्कि इसको काल अवयव की संज्ञा दी। भरत ने जाति की जो व्याख्या की थी वह जाति काल के सन्दर्भ में भी ताल के सन्दर्भ में वही जाति को उन्होंने ताल के सन्दर्भ में ताल भेद के रूप में प्रकट किया।

ग्रह शब्द का भी भरत के नाट्यशास्त्र में ताल तत्वों के सम्बन्ध में प्रयोग नहीं किया गया है। इसके लिए भारत द्वारा पाणि शब्द प्रयोग किया गया। प्रस्तार का भी उल्लेख भरत ने नहीं किया वरन दो मूल मार्गी तालें चच्चपुट तथा चाचपुट के अंगों का मंजन कर नई तालों की उत्पत्ति माना है।

मध्यकाल के ग्रन्थ संगीत दर्पण, संगीत परिजात में भी उन्हीं ताल के दस प्राणों का उल्लेख किया गया जो कि संगीत मकरद के ताल के दस प्राण हैं तथा वर्तमान में भी ये ही दस प्राण मान्य हैं जिनकी व्याख्या आगे की जाएगी।

1.4 काल

संगीत में काल को निश्चित करने के लिए ताल की रचना की। जिस प्रकार असीमित काल को सेंकेड, मिनिट, घण्टा, दिन, सप्ताह, माह व वर्ष निश्चित किया उसी प्रकार संगीत में ताल का मुख्य प्रयोज्य काल को व्यवस्थित कर संगीत को स्थायित्व प्रदान करना था। अतः ताल रचना में काल मुख्य एवं अनिवार्य तत्व है। सभी ग्रन्थों में ताल के दस प्राण में काल का क्रम पहला है। काल गणना हेतु 425 पक्षियों की ध्वनि का भी सहारा लिया गया। काल गणना के लिए क्षण, लव, काष्ठा, निमेष, कला, अुणद्रुत, दुत, लघु, गुरू, तथा प्लुत का आधार लिया तथा तालों हेतु इनसे मात्रा तथा मात्रांश का निर्धारण हुआ। 425 पक्षियों की आवाज से निम्न प्रकार काल निर्धारण किया:–

नेवला की आवाज	–	1/2 मात्रा	द्रुत
नीलकण्ठ की आवाज	–	1 मात्रा	लघु
कौए की आवाज	–	2 मात्रा	गुरू
मयूर की आवाज	–	3 मात्रा	प्लुत

संगीत दामोदर ग्रन्थ में काल निर्णय श्री कृष्ण की बंशी की ध्वनि से किया है जिसके अनुसार कृष्ण जब अपनी बंशी की ध्वनि से राधा को पुकारते थे तो उसका काल प्लुत अथवा तीन मात्रा का होता था। इसके अतिरिक्त कृष्ण की बंशी द्रुत, लघु तथा गुरू के लिए निश्चित थी। द्रुत हेतु पारिजात बंशी, लघु हेतु कनकरेखा बंशी तथा गुरू हेत शशिकला बंशी थी।

समयसार ग्रन्थ में उल्लेख है कि 100 कमलपत्रों को एक के ऊपर एक रखकर सुई से छेद करने का काल एक क्षण है। क्षण का काल निश्चित होने पर अन्य का अनुपात काल निम्न प्रकार हैः–

8 क्षण	–	1 लव
8 लव	–	1 काष्ठा
8 काष्ठा	–	1 निमेष
8 निमेष	–	1 कला
2 कला	–	1 त्रुटि अथवा अणुद्रुत
2 अणुद्रुत	–	1 द्रुत
2 द्रुत	–	1 लघु
2 लघु	–	1 गुरू
3 लघु	–	1 प्लुत
4 लघु	–	1 काकपद

द्रुत, लघु अथवा गुरू में से किसी को भी काल अवधि अपनी क्षमता के आधार पर निश्चित करने से अन्य की उसी अनुपात में काल अवधि निश्चित हो जाएगी। लघु का मान एक मात्रा का माना गया है इसमें वैज्ञानिक आधार लेते हुए एक मात्रा का काल यदि एक सैकेंड माना जाय तो सभी का काल निश्चित हो जाएगा, जिससे संगीत के काल के निरूपण में स्थिरता आ जाएगी। क्योंकि 100 कमलपत्रों को प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार ही भेद पाएगा जिस कारण काल गणना में प्रामाणिकरण नहीं हो पाएगा। पांच अक्षरकाल के उच्चारण काल को 1 लघु अथवा 1 मात्रा का काल कहा गया है। इसमें भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार उच्चारण कर सकता है तथा उच्चारण काल पृथक हो सकता है। अतः काल के निश्चित निर्धारण के लिए सैकेण्ड ही सबसे उचित होगा जो सर्वमान्य होगा तथा संगीत में काल निर्धारण को निश्चितता प्रदान करेगा। संगीत हेतु काल निर्धारण अणुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत तथा काकपद आदि से ही किया जाता है। लघु गुरू का आधा, द्रुत लघु का आधा तथा अणुद्रुत दुत का आधा है। प्लुत लघु का तीन गुना तथा काकपद लघु का चार गुना है। अतः इनमें मात्रा में परिवर्तन के पश्चात लघु की मात्रा एक होने पर द्रुत 1/2 मात्रा, अणुद्रुत 1/4 मात्रा, गुरू की दो मात्रा, प्लुत की तीन मात्रा तथा काकपद की चार मात्रा हुई।

1.5 मार्ग

मार्ग का स्थान ताल के दस प्राण में दूसरा है। मार्ग का साधारण अर्थ रास्ता है। किसी भी मार्ग से दो स्थानों की दूरी को मापा जा सकता है उसी प्रकार ताल में मार्ग द्वारा ताल की लम्बाई का ज्ञान होता है। अर्थात ताल की एक आवृत्ति कितनी लम्बाई की है, मार्ग द्वारा इसका ज्ञान हो जाता है। निश्चित काल में कला और पात के समूह को मार्ग कहते हैं। भरत ने तीन मार्गों का उल्लेख किया है चित्त, वार्तिक तथा दक्षिण। शांरगदेव ने इन तीन मार्गों के अतिरिक्त ध्रुव मार्ग भी बताया है। मानसोल्लास ग्रन्थ में ध्रुव मार्ग को चित्रतर कहा गया है। अतः इसके अनुसार चार मार्ग स्थापित किए गए ध्रुव अथवा चित्र, चित्त, वार्तिक एवं दक्षिण। ध्रुव मार्ग का प्रयोग स्वतंत्र रूप से मार्गी तालों में नहीं होता है बल्कि मार्गों के अन्तर्गत भेद करते

समय या फिर मागधी गीति में ही इसका प्रयोग होता था। भरत के अनुसार चित्र की दो मात्रा, वार्तिक की चार मात्रा तथा दक्षिण की आठ मात्रा की कला मानी। बाद में ध्रुव मार्ग को भी सम्मिलित किया गया जिससे एक मात्रा की कला निश्चित की गई। निशब्द एवं सशब्द क्रियाओं का विश्रन्ति काल कितना होगा यह मार्ग पर ही आधारित होता है। ध्रुव मार्ग में निशब्द क्रियाऐं नहीं होती हैं अतः इसको मार्गी संगीत में प्रयोग नहीं किया गया है। चार मार्ग को आप निम्नलिखित उदाहरण से समझ सकेंगेः–

ध्रुव मार्ग	– एम मात्रा कला अथवा एकमात्रिक कला तालाघात	। ×
चित्र मार्ग	– दो मात्रा कला अथवा द्विमात्रा कला	1 2 × o
वर्तिक मार्ग	– चार मात्रा कला अथवा चतुमात्रिक कला	1 2 3 4 + 0 0 0
दक्षिण मार्ग	– आठ मात्रा कला अथवा अष्टमात्रिक कला	1 2 3 4 5 6 7 8 + 0 0 0 0 0 0 0

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि ध्रुव मार्ग एक मात्रा की कला है तथा एक मात्रा में कोई विश्रान्ति नहीं है, चित्र मार्ग में एक मात्रा में एक मात्रा का विश्राम है अतः दो मात्रा की कला है, वार्तिक मार्ग में एक मात्रा में 3 मात्रा का विश्राम है अतः चार मात्रा की कला है तथा दक्षिण में एक मात्रा में सात मात्रा का विश्राम है अतः आठमात्रा की कला है। उपर के विश्राम कला के अनुसार मार्ग से ताल की लम्बाई एवं गति भेद का भी ज्ञान होता है। चित्र मार्ग में द्रुत गति, वार्तिक में मध्य गति तथा दक्षिण में विश्राम अधिक होने पर विलम्बित अथवा धीमी गति का बोध होता है। ध्रुव मार्ग में गति, चित्र मार्ग की गति से दुगुनी होगी अतः इसको अति द्रुत कह सकते हैं। बाद के ग्रन्थों में चित्र के अन्य दो भेद चित्रतर तथा चित्रतम भेद भी बताए गए। चित्रतर ही ध्रुव है अथवा इसका आधा स्वरूप चित्रतम होगा जिसको अति–अति द्रुत गति कहा जा सकता है। चच्चत्पुट मार्गी ताल का उपरोक्त मार्गी से स्वरूप निम्न प्रकार का होगा। लघु का अक्षर काल 5 का माना गया।

चच्चत्पुट चित्रमार्ग	ऽ	ऽ	।	ऽ'
अक्षर काल	**10**	**10**	**5**	**15**
मात्रा	**2**	**2**	**1**	**3**
चच्चत्पुट वार्तिक मार्ग	ऽ	ऽ	1	ऽ'
अक्षर काल	**20**	**20**	**10**	**30**
मात्रा	**4**	**4**	**2**	**6**
चच्चत्पुट दक्षिण मार्ग	ऽ	ऽ	1	ऽ'
अक्षर काल	**40**	**40**	**20**	**60**
मात्रा	**8**	**8**	**4**	**12**

मार्गी ताल में ध्रुव मार्ग का प्रयोग नहीं किया जाता था।

वर्तमान सन्दर्भ में जबकि विलम्बित, अतिविलम्बित, मध्य, द्रुत तथा अतिद्रुत गति का प्रयोग होने लगा है तो मार्ग के सापेक्ष दक्षिण मार्ग को अति विलम्बित, वार्तिक मार्ग को विलम्बित, चित्र मार्ग को मध्य, ध्रुव अथवा चित्र को द्रुत तथा चित्रतर एवं चित्रतम को अति द्रुत गति का कहा जा सकता है।

एकल गायन के विलम्बित ख्याल में दक्षिण मार्ग, मध्य लय की रचना में वार्तिक तथा झाला एवं तराना में ध्रुव मार्ग का प्रयोग किया जाता है।

एक ताल के ठेके को तीन मार्ग में निम्न प्रकार से प्रदर्शित करेंगेः–

एकताल ध्रुव मार्ग :–

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धि	ना
×		0		2		0		3		4	

एकताल चित्र मार्ग :–

धिं ऽ	धिं ऽ	धा गे	तिर किट	तू ऽ	ना ऽ	क ऽ	ता ऽ	धा गे	तिर किट	धी ऽ	नाऽ
×		0		2		0		3		4	

एकताल वार्तिक मार्ग :–

धिऽऽऽ	धिंऽऽऽ	धाऽगेऽ	तिरकिट	तूऽऽऽ	नाऽऽऽ
×		0		2	
कऽऽऽ	त्ताऽऽऽ	धाऽगेऽ	तिरकिट	धीऽऽऽ	नाऽऽऽ
0		3		4	

एकताल दक्षिण मार्ग :–

धिऽऽऽऽऽऽऽ	धिंऽऽऽऽऽऽऽ	धाऽऽऽगेऽऽऽ	तिऽरऽकिऽटऽ	तूऽऽऽऽऽऽऽ	नाऽऽऽऽऽऽऽ
×		0		2	
कऽऽऽऽऽऽऽ	त्ताऽऽऽऽऽऽऽ	धाऽऽऽगेऽऽऽ	तिऽरऽकिऽटऽ	धीऽऽऽऽऽऽऽ	नाऽऽऽऽऽऽऽ
0		3		4	

प्राचीन संगीतकारों ने पहले ही गति के अतिबिलम्बित, बिलम्बित, मध्य, द्रुत एवं अतिद्रुत भेद की कल्पना कर ली थी तथा वर्तमान संगीत में इन सभी गति भेदों का प्रयोग हो रहा है।

1.6 क्रिया

वैदिक कालीन संगीत से गायन वादन साथ हाथ से ताल देने की प्रथा रही है। वाजसनेयी संहिता में हाथ से ताल देने वाले को गणक कहा है। हाथ से ताल दिखाने वाले का विशेष महत्व होता था। वीणा वादन तथा नृत्य के साथ भी हाथ से ताल देने वाले को नियुक्त किया जाता था। हाथ से ताल प्रदर्शित करने को क्रिया कहा गया। क्रिया का अर्थ सामान्य तौर पर करने से है। संगीत में काल का माप क्रिया के द्वारा ही किया जाता है। प्राचीन समय में काल को प्रकट करने के लिए घन वाद्य का भी प्रयोग किया जाता था। हाथ से ताल देने की क्रिया दो प्रकार की है सशब्द एवं निशब्द। सशब्द वे क्रिया है जिसमें ध्वनि सुनाई दे तथा निशब्द वे क्रिया है जिसमें ध्वनि सुनाई न दे। सशब्द क्रियाओं को शम्यादि तथा निशब्द क्रियाओं को आवापादि की संज्ञा दी गई। इन क्रियाओं के द्वारा ताल स्थापित की जाती थी जिससे गायक, वादक तथा नृत्यकारों को प्रस्तुती में सहायता मिलती थी। सशब्द तथा निशब्द दोनों ही क्रियाओं के संयोग से ताल प्रकट होती है। इन दोनों का काम काल विभाजन का है। मार्गी तालों के मूल स्वरूप में केवल सशब्द क्रिया ही रहती है तथा निशब्द क्रिया उसके विस्तार को प्रकट करती है।

एक सशब्द क्रिया से दूसरी सशब्द क्रिया के मध्य का समय अथवा कालमान निशब्द क्रिया के द्वारा ही प्रकट किया जाता है। अतः ताल को प्रदर्शित करने में दोनों सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं का महत्व है। इन क्रियाओं को एक साधारण उदाहरण से भी समझा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाए और वह उसका उत्तर बोलकर दे तो वह क्रिया सशब्द क्रिया होगी और यदि उसका उत्तर संकेत मात्रा से दे तो वह निशब्द क्रिया कहलाएगी।

सशब्द क्रिया – ध्वनियुक्त क्रिया सशब्द क्रिया है तथा यह चार प्रकार की होती है।

1. **शम्या** – दाहिने हाथ से ताली देना
2. **ताल** – बांए हाथ से ताली देना
3. **सन्निपात** – दोनों हाथ से ताली देना
4. **ध्रुवा** – हाथ से चुटकी बजाकर नीचे की आरे लाना।

निशब्द क्रिया – ध्वनि रहित क्रिया निशब्द क्रिया है तथा यह भी चार प्रकार की है।

1. आवाप – हाथ से उपर उठाकर अंगुलियों को सिकोड़ना
2. निष्काम – नीचे की ओर अंगुलियों को फैलाना

3. विक्षेप – उठे हाथ की अंगुलियों को फैलाकर दक्षिण की ओर गिराना।
4. प्रवेशक – अंगुलियों को झुकाकर सिकोड़ना।

सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं के करने के ढंग को कलाविधि कहा गया है। इन क्रियाओं को प्रदर्शित करने के लिए क्रियाओं के नाम का पहला अक्षर संकेत के रूप में प्रयोग किया जाता है जो निम्न प्रकार है।

क्रिया के नाम	–	**संकेत**
शम्या	–	श अथावा शं
ताल	–	ता
सन्निपात	–	सं
आवाप	–	आ
निष्काम	–	नि
विक्षेप	–	वि
प्रवेशक	–	प्र

चच्चपुट तथा चाचपुट तथा उदघट ताल में क्रियाओं का प्रदर्शन निम्न प्रकार से होगा।

चच्चत्पुट	**चाचपुट**	**उदघट**
ऽ ऽ । ऽ'	ऽ । । ऽ	ऽ ऽ ऽ
सं श ता श	**सं रा ता श**	**नि श श**

चच्चत्पुट में क्रियाओं का क्रम सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या का होगा, चाचपुट में क्रियाओं का क्रम सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या का होगा तथा उदघट में क्रियाओं का क्रम निष्काम, शम्या, शम्या का होगा।

चच्चत्पुट तथा चाचपुट तालों की कला विधि एक जैसी बताई गई है। सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं की परिपाटि वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत में देखी जाती है जिसमें कलाकार प्रस्तुती के साथ से ताल देता है अथवा मंच पर बैठे कलकारों में से कोई भी हाथ से ताल देता है, अलग से हाथ से ताल देने वाले की आवश्यकता नहीं होती है। वर्तमान के उत्तर भारतीय संगीत में भी ताल को हाथ से प्रदर्शित करने के लिए सशब्द एवं निशब्द क्रिया की जाती है। ताल में सम एवं ताली सशब्द क्रिया तथा खाली निशब्द क्रिया होती है। भातखण्डे लिपि पद्धति में सम को + ताली को अंक तथा खाली को 0 संकेत से प्रकट करते हैं।

1.7 अंग

काल प्राण के अर्न्तगत काल खण्डों की चर्चा की गई है। सूक्ष्म काल खण्ड, कला, काष्ठा, निमेष आदि के संयोग से अंग की रचना होती है। भरत ने मार्गी तालों के उपयोग लिए तीन अंग लघु, गुरू तथा प्लुत ही उपयोगी बताए हैं। दो या दो से अधिक अंगों के संयोग से ताल की रचना होती है। मार्गी ताल चच्च्त्पुट ऽ ऽ । ऽ' की रचना लघु गुरू प्लुत के संयोग से हुई है। एक अंग से ताल की परिकल्पना नहीं की सकती है परन्तु अपवाद स्वरूप संगीत रत्नाकर में दी गई 120 ताल में से आदि ताल, करूण ताल तथा एकताली एक अंग की तालें हैं। वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत की सात मूल तालों में एकताल भी एक अंग की ताल है। उत्तर भारतीय संगीत में एक अंग की कोई ताल नहीं है। भरत ने केवल लघु, गुरू तथा प्लुत अंगो का ही प्रयोग किया था परन्तु उनके बाद नन्दिकेश्वर ने अपने ग्रन्थ भरतार्णव में द्रुत, काकपद तथा विराम का प्रयोग देशी तालों में किया है। विराम का प्रयोग लघु एवं द्रुत अंग के साथ ही किया जाता है– लघु विराम एवं द्रुत विराम। विराम का स्वतंत्र रूप में कोई अस्तित्व नहीं है। बाद में अणुद्रुत का भी प्रयोग होने लगा। इन अंगों के संकेत चिन्ह तथा मात्रा की तालिका निम्न प्रकार से है।

अंग	**संकेत**	**मात्रा**
अणुद्रुत	अर्धचन्द्र	1/4
द्रुत	0 पूर्णचन्द्र	1/2

द्रुत विराम	0 अथवा 0	3/4
लघु	। (खडी रेखा)	1
लघु विराम	।	$1\frac{1}{4}$
गुरू	ऽ	2
प्लुत	ऽ′	3
काकपद	+	4

मार्गी ताल तथा देशी ताल को इन्ही अंगो से प्रकट किया जाता था। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में भी तालों को अंगों से प्रकट किया जाता है परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में तालों को प्रदर्शित करने के उपरोक्त अंगों का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि मात्रा एवं विभाागों द्वारा ताल प्रदर्शित की जाती है। जैसे तीनताल–

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
×				2				0				3			

तीनताल को अंको के रूप में निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है।

4+4+4+4	1	5	9	13
	×	2	0	13

उपरोक्त से तीनताल में चार–चार विभाग, प्रथम मात्रा पर सम, पांचवी मात्रा पर दूसरी ताली, नौवी मात्रा पर खाली तथा तैरहवीं मात्रा पर तीसरी तथा अन्तिम ताली है। तीनताल को अंग भेद के अनुसार + + + + रूप सेप्रदर्शित करेंगे। अर्थात तीनताल चार काकपद की चार अंगों की ताल है।

कुछ प्रचलित तालों को अंगों के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है। कर्नाटक ताल पद्धति में भी अंग द्वारा ही ताल प्रदर्शित की जाती है।

झपताल	–	ऽ ऽ′ ऽ ऽ′	गुरू प्लुत गुरू प्लुत	मात्रा	= 10
एकताल	–	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	छः गुरू	मात्रा	= 12
रूपक	–	ऽ′ ऽ ऽ	एक प्लुत दो गुरू	मात्रा	= 7
आडाचारताल	–	ऽऽऽऽऽऽ	सात गुरू	मात्रा	= 14
दीपचन्दी	–	ऽ′ + ऽ′ +	प्लुत काकपद प्लुत काकपद	मात्रा	= 14
पंचमसवारी	–	ऽ′ + + +	प्लुत काकपद काकापद	मात्रा	= 15
कहरवा	–	+ +	दो काकपद	मात्रा	= 8

उत्तर भारतीय तालों को कर्नाटक ताल पद्धति में भी उपरोक्त विधि से लिखा जाएगा।

1.8 ग्रह

ग्रह का साधारण अर्थ ग्रहण करना अथवा पकड़ना है। ग्रह शब्द का अर्थ घर अर्थात स्थान भी है। भरत ने ग्रह के स्थान पर पाणि शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ भी ग्रहण करना ही है। संगीत में ताल का ग्रहण कब किया जाता है उसी के भेद ग्रह भेद के रूप में बताए गए। गायन, वादन तथा नृत्य में ताल को कब पकडा जाता है उसे ग्रह कहते हैं अर्थात ताल में जिस स्थान से क्रिया प्रारम्भ की जाती है उसे ग्रह कहा गया। ग्रहण करने के स्थान को ग्रह कहा गया।

ताल को गायन, वादन तथा नृत्य के साथ आरम्भ करने की दो स्थितियां हो सकती है एक साथ तथा आगे व पीछे। इन्हीं स्थितियों को सम ग्रह एव विषम ग्रह से प्रकट किया गया।

- **सम ग्रह –** गीत और ताल दोनों साथ साथ उठे।
- विषम ग्रह – गीत और ताल के आरम्भ के स्थान में अन्तर है।

विषम ग्रह दो प्रकार का होता है अतीत एव अनागत जो निम्न है :–

- अतीत ग्रह – सम के आघात के उपरान्त यदि गायन, वादन व नृत्य की क्रिया आरम्भ हो।
- अनागत – सम के आद्यात के पूर्व यदि संगीत की क्रिया आरम्भ हो।

भरत ने ग्रह के स्थान पर पाणी शब्द का प्रयोग किया था तथा उसके अनुसार इन्होंने समापाणि, अवपाणि तथा उपरिपाणी का उल्लेख किया जो क्रमशः समग्रह, अतीतग्रह तथा अनागत ग्रह हैं।

ग्रह संगीत तथा ताल की उठान अथवा आरम्भ को दर्शाता है। ताल गीत को प्रातिष्ठित करता है अतः ताल में ग्रह का विशेष महत्व है।

संगीत की रचनाओं में तथा ताल में सम वह स्थान है जहां से संगीत रचना तथा ताल आरम्भ की जाती है संगीत कलाकारों द्वारा सुन्दर ढंग से सम का प्रयोग करना ही ग्रह भेद के अन्तर्गत आता है। सामान्य रूप से समग्रह का ही प्रयोग किया जाता है परन्तु चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विषम ग्रह का प्रयोग होता है। इसका सुन्दर प्रयोग कलाकार की क्षमता एवं कुशलता पर आधारित होता है।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर से समग्रह को मध्यलय, अतीतग्रह का द्रुत लय तथा अनागत ग्रह का विलम्बित लय में प्रयोग हेतु उपयुक्त बताया। संगीत को जिस ग्रह से आरम्भ करते थे उसी पर समाप्त भी किया जाता था। समग्रह में समाप्त होने पर समार्वतन, अतीत ग्रह से समाप्त होने पर अधिकावर्तन तथा अनागत ग्रह में समाप्त होने पर हीनावर्तन कहा गया है।

1.9 जाति

जाति का अर्थ विशेष पहचान, विशेषता तथा विशेष वर्ग समूह से है जो दूसरे से भिन्न हो होता है। जिस प्रकार भारतीय समाज में जाति प्रथा है उसी प्रकार तालों को भी जाति में बांटा गया। मार्गी तालों के भरत ने दो भेद किए थे – चतुरश्र एवं त्रयश्र। इनको ही बाद में जाति की संज्ञा दी गई। अतः प्राचीन मार्गी ताल की दो ही जाति चतुरश्र एवं त्रयश्र थी। चच्चत्पुट चतुरश्र की तथा चाचपुट त्रयश्र जाति की थी।

चंत	चत	पु	टः		चा	च	पु	ट
गुरू	गुरू	लघु	प्लुत		गुरू	लघु	लघु	गुरू
2	2	1	3		2	1	1	2
चतुरश्र		चतुरश्र			त्रयश्र		त्रयश्र	

चच्त्पुट ताल में दो खण्ड है। पहले खण्ड में दो गुरू मिलकर चार अक्षर अथवा चार मात्रा हो गई। दूसरे खण्ड में एक लघु और प्लुत मिलकर चार अक्षर बन गए इस प्रकार यह चतुरश्र जाति की ताल हुई। चाचपुट ताल के पहले खण्ड में गुरू एवं लघु तथा दूसरा खण्ड पहले खण्ड का प्रतिबिम्ब लघु एवं गुरू है। पहले एवं दूसरे खण्ड में क्रमशः तीन–तीन अक्षर अथवा मात्रा बन गई इस प्रकार यह त्रयश्र जाति की ताल हुई। पांच मार्गी तालों में चच्चत्पट चतुरश्र तथा अन्य चार तालें त्रयश्र जाति की थी।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में चतुरश्र एव त्रयश्र के अतिरिक्त खण्ड भेद का भी उल्लेख किया है। खण्ड का अर्थ तोड़ने से है अतः चतुरश्र अंग के भेद का खण्डन करके खण्ड जाति प्राप्त हुई। प्लुत को गुरू में, गुरू को लघु में तथा लघु को द्रुत में विघटित किया जाता है। अतः संगीत रत्नाकर के समय तक चतुरश्र, त्रयश्र तथा खण्ड जाति अस्तित्व में आई। बाद में चतुरश्र तथा त्रयश्र जाति के संयोग से मिश्र जाति बनी। खण्ड एवं मिश्र के संयोग से संकीर्ण जाति बनी। अतः वर्तमान में ताल की पांच जातियां चतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड, मिश्र तथा संकीर्ण है।

संगीत दर्पण में उपरोक्त पांच जातियों के लिए मात्राओं का उल्लेख है जिसके अनुसार त्रयश्र के लिए तीन मात्रा, चतुरश्र के लिए चार मात्रा, खण्ड के लिए पांच मात्रा, मिश्र के लिए सात मात्रा तथा संकीर्ण के लिए नौ मात्रा निर्धारित की गई है। खण्ड, मिश्र, संकीर्ण, जातियां चतुरश्र तथा त्रयश्र जाति से ही बनी हैं।

चतुरश्र   त्रयश्र

| | | | | | |

4   3

खण्ड –चतुरश्र का आधा भाग करके तथा इसको त्रयश्र में मिलाने से बनी ।

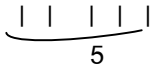

| | | | |

5

मिश्र– चतुरश्र एवं त्रयश्र जाति को मिलाने से बनी।

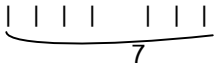

| | | | | | |

7

संकीर्ण – खण्ड एवं चतुरश्र को मिलाने बनी।

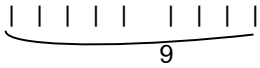

| | | | | | | | |

9

उपरोक्त पांच जातियों का भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था के साथ भी जोड दिया गया। जिसके अनुसार चतुरश्र जाति को ब्राहमण, त्रयश्र जाति को क्षत्रिय, खण्ड जाति को वैश्य, मिश्र जाति को शूद्र तथा संकीर्ण जाति को वर्ण संकर कहा गया। संगीत रत्नाकर में एला प्रबन्ध गायन की चार रिति नादावती, हंसावती, नन्दावती तथा भद्रावती वर्णित की है जो क्रमशः त्रतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड एवं मिश्र जाति से सम्बन्धित है।

दक्षिण भारतीय संगीत की तालों का आधार उपरोक्त पांच जाति है। दक्षिण भारतीय संगीत की मूल तालें सात है तथा इनके जाति भेद से प्रत्येक की पांच तालें बनती है तथा इस प्रकार दक्षिण संगीत की 35 तालों का निर्माण होता है। लघु की काल अवधि सामान्यतः चार होती है परन्तु जातियों के लिए उसकी अवधि जाति के अनुसार बदल जाती है। अतः त्रयश्र में तीन, खण्ड में पांच, मिश्र में सात तथा संकीर्ण मे नौ हो जाती हैं। इन जातियों से विभिन्न लय भेद भी प्राप्त होते हैं जिनका उत्तर भारतीय ताल में प्रयोग होता है।

चतुरश्र	–	बराबर, दुगुन, चौगुन, अठगुन।
त्रयश्र	–	पौनी, डेढगुन, तिगुन, छःगुन।
खण्ड	–	सवाई गुन, चार में पांच मात्रा।
मिश्र	–	पौने दो गुन, चार में सात मात्रा।
संकीर्ण	–	सवा दो गुन, चार में नौ मात्रा।

1.10 कला

कला का समान्य किसी कार्य को भली भांति नियमानुसार करने का कौशल हैं। छन्द शास्त्रों में मात्रा को कला कहते हैं। शक्ति का आकार होने पर शिव को कलानिधि कहा जाता है। संगीत, काव्य, नाट्य, चित्र आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है। ताल के सन्दर्भ में कला प्रयोग निशब्द क्रिया, ताल का भाग तथा गुरू अंग अथवा दो मात्रा के लिए किया गया है कला का प्रयोग ताल के विभिन्न स्वरूपों की रचना में किया जाता था। सशब्द क्रिया को भरत ने पातकला कहा।

भरत द्वारा ताल के तीन भेद यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल बताए जिसका मुख्य आधार गुरू है। अतः सम्भवतः इस कारण गुरू को कला कहा गया। यथाक्षर को एकल कहा गया है। एकल का अर्थ है जिसके प्रत्येक खण्ड अथवा पादभाग में एक–एक कला हो। एकल स्वरूप में सभी क्रियाएं सशब्द होती है अतः एकल भेद में सशब्द क्रिया कला है। मार्गी ताल की सभी तालों में एकल स्वरूप में केवल सशब्द क्रिया होती है जिसमें ताल उदघट अपवाद है जिसके एकल स्वरूप में निशब्द क्रिया आरम्भ में होती है। तालों के द्विकल तथा चतुष्कल भेदों में दोनों सशब्द एवं निशब्द क्रियाऐं होती है अतः कला सशब्द एवं निशब्द दोनों क्रिया का प्रतीक है। पांच निमेष के बराबर समय से एक मात्रा तथा मात्रा के संयोग से कला बनती है। तालों के द्विकल तथा चतुष्काल भेदों में सारी कलाऐं गुरू से ही होती है। ताल के नाम में प्रयुक्त अक्षरों के

अनुसार यदि पात हो तो उसे यथाक्षर अथवा एकल, जब यह दो गुरू से युक्त होता है तो उसे द्विकल तथा चार गुरू से युक्त होने पर इसको चुतष्कल कहा जाता है। चच्चत्पुट तथा चाचपुट ताल की एकल, द्विकल तथा चतुष्कल भेद रचना विधि निम्न प्रकार से हैः–

	च	**च्च**	**त्पु**	**ट**
यथाक्षर अथवा एकल	ऽ	ऽ	।	ऽ'
प्रत्येक मात्रा को दुगनी की गई	ऽऽ	ऽऽ	।।	ऽ'ऽ'
सभी को गुरू में परिवर्तित करने पर	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽऽ
द्विकल स्वरूप	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चुष्काल स्वरूप	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

	चा	**च**	**पु**	**ट**
यथाक्षर काल अथवा एकल	ऽ	।	।	ऽ
प्रत्येक मत्रा को दुगना किया	ऽऽ	।।	।।	ऽऽ
सभी को गुरू में परिवर्तित किया	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ
द्विकल स्वरूप	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्कल स्वरूप	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

चच्चत्पुट ताल में सभी को गुरू में परिवर्तित करने के लिए दो प्लुत को तीन गुरू में परिवर्तित किया गया। उसके बाद अन्तिम मात्रा से एक गुरू लेकर उसको तीसरी मात्रा में जोड़ा गया जिससे द्विकल स्वरूप बना तथा इसको दुगुना करने पर चतुष्कल रूवरूप प्राप्त होता है। चाचपुट में भी पहले प्रत्येक मात्रा दो गुना की गई उसके पश्चात सभी को गुरू में बदला जो कि बीच की दो लघु से एक गुरू बनाकर बनी, जिससे द्विकल भेद बना तथा इसका दो गुना करने पर चतुष्कल भेद प्राप्त हुआ।

प्राचीन समय में लय गति को धीमा करने के लिए कला का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान समय में उत्तर भारतीय ताल पद्धति में भी ताल की लम्बाई, कला भेद का प्रयोग कर बढ़ाई जाती है। वर्तमान की ख्याल गायकी में विलम्बित तथा अतिविलम्बित लय का प्रयोग किया जाता है जिसको क्रमशः सामान्य भाषा में चौबीस मात्रा की एकताल एवं अठतालिस मात्रा की एकताल कहा जाता है। इस प्रकार विलम्बित में एकताल की लम्बाई 24 मात्रा की तथा अतिविलम्बित में 48 मात्रा की हो गई। एकताल का यह स्वरूप द्विकल तथा अतिबिलम्बित का रूपरूप चतुष्कल का हो गया। एकताल के इन स्वरूपों को चित्र मार्ग एवं वार्तिक मार्ग में मार्ग प्राण के अन्तर्गत दिया गया है। वर्तमान के ताल सन्दर्भ में द्विकल, चतुष्कल शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

1.11 लय

लय पूरे ब्रहमाण्ड में व्याप्त है तथा इसमें विकृति आने पर प्रलय आ जाती है। सूर्य का उदय तथा अस्त होना, पृथ्वी के द्वारा सूर्य की परिक्रमा जो कि गति की समानता के साथ होती है, प्रकृति में लय के उदाहरण है। मानव शरीर रचना में हृदय के स्पन्दन की समान गति एवं नाडी की समान गति शरीर को स्वस्थ्य रखती है तथा इसमें अनियमितता आने पर मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है। नाड़ी की तथा हृदय के स्पन्दन की समान गति ही लय है जो मानव के शरीर को सन्तुलित कर उसको स्वस्थ्य रखती है।

संगीत में भी लय का महत्वपूर्ण स्थान है तथा बिना लय के संगीत हो ही नहीं सकता। जो स्थान शरीर में नाड़ी स्पन्दन का है वही स्थान संगीत में लय का है। लय को जब मात्राओं के आवर्तन में व्यवस्थित किया जाता है तो ताल का निर्माण होता है, अतः ताल का आधार भी लय है। समय की समान गति ही लय है।

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में क्रिया के अन्त में जो विश्रान्ति अथवा विराम होता है उसको लय कहा गया है। संगीत दर्पण में पं. दामोदर द्वारा दो क्रियाओं को बीच होने वाल अन्तर काल को लय कहा है। संगीत

पारिजात में भी उक्त परिभाषा का समर्थन किया है। संगीत पारिजात तथा संगीत दर्पण में लय की व्याख्या संगीत रत्नाकर में दिए गए श्लोक के द्वारा ही की :–

क्रियान्तरविश्रान्तिलर्यः स त्रिविधोमतः।
तत्ताद्विरामकालेन द्रुतमध्यविलम्बिताः।।

विराम काल के तीन भेद द्रुत, लय, मध्य तथा विलम्बित बताए। अतः लय तीन प्रकार की द्रुत, मध्य एवं विलम्बित मानी गई। द्रुत से दुगनी विश्रान्ति वाली लय मध्य तथा मध्य से दुगनी विश्रान्ति वाली लय को विलम्बित कहा गया है। अतः इन तीनों लयों के परस्पर सम्बन्ध है। अतः किसी एक को आधार मान कर ही अन्य दो को निश्चित किया जा सकता है, स्वतन्त्र रूप से नहीं। विलम्बित तथा द्रुत लय को अति विलम्बित तथा अति–अति विबलम्बित तथा द्रुत के अति द्रुत तथा अति–अति द्रुत भेद क्रमशः ख्याल गायन शैली के विलम्बित ख्याल में तथा तराना एवं तन्त्र वाद्य पर झाला प्रस्तुत में वर्तमान में प्रयोग हो रहा है, जो कि कलाकार के कौशल पर निर्भर करता है। लय के भेद संगीत में रस तथा भाव की निष्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। द्रुत लय में रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक तथा अदभुत, मध्य लय में हास्य तथा श्रृंगार तथा विलम्बित लय में शान्त एवं करूण रस की निष्पत्ति बताई गई है। भरत ने नाट्यशास्त्र में ओद्य, अनुगत एवं तत्व को क्रमशः द्रुत, मध्य एवं विलम्बित के सापेक्ष बताया है।

संगीत में लय भेद द्रुत, मध्य एवं बिलम्बित लय के प्रयोग होते हैं तथा इन सभी के उपयुक्त प्रयोग से संगीत कार्यक्रम सफल होता है। गायन में अतिविलम्बित एवं अति अति विलम्बित करने पर गीत के शब्द स्पष्ट नहीं रह पाते क्योंकि उनको लय एवं स्वर के साथ तोड़ना पड़ता है। अति द्रुत एवं अति–अति द्रुत लय में भी गति के शब्द स्पष्ट नहीं सुने जा सकते हैं। जिससे गीत के काव्य की आत्मा के साथ अनर्थ होता है। लय इतनी ही रखी जानी चाहिए कि गीत के काव्य में स्पष्टता रहे। तराना, निरर्थ शब्दों से बना होता है अतः इसमें अति तथ अति–अति द्रुत लय का प्रयोग कर श्रोताओं की वाह–वाह लेने में कोई बुराई नहीं है। सामान्य संगीत के श्रोताओं को द्रुत लय में अधिक आनन्द आता है।

संगीत में लय का कोई प्रमाण निश्चित नहीं किया गया अर्थात विलम्बित लय कहने से यह पता नहीं चलता कि इसका समय माप का है। यदि 1 सेकेण्ड को विलम्बित लय में एक मात्रा मान लें तो इससे लय को प्रमाणित किया जा सकता है।

1.11.1 लयकारी – जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि द्रुत से दुगुनी विश्रान्ति वाली मध्य लय तथा मध्यलय से दुगनी विश्रान्ति लय विलम्बित लय कहलाती है। यह दुगुना करना ही लयकारी कहलाता है। अर्थात तीनताल को यदि दो गुना करेंगें तो तीनताल आठ मात्रा की होगी एवं यदि तीनताल की प्रत्येक मात्रा को चौगुना करेंगे तो तीनताल चारमात्रा की होगी, यही क्रमशः दुगुन एवं चौगुन की लयकारी कहलाएगी। दुगुन में विश्रान्ति काल आधा तथा चौगुन में विश्रान्ति काल 1/4 हो जाएगा। एक मात्रा में एक मात्रा से अधिक मात्राओं को प्रयोग करने पर लयकारी बनती है। मध्य लय विलम्बित लय की दुगुन है, द्रुत लय मध्यलय की दुगुन है एवं द्रुत लय विलम्बित लय की चौगुन की लयकारी है।

ताल के अंग लघु, गुरू, प्लुत एवं काकपद से भी लयकारी को समझा जा सकता है। लघु एक मात्रा, गुरू दो मात्रा, प्लुत तीन मात्रा तथा काकपद चार मात्रा प्रदर्शित करते हैं। अतः लघु की एक मात्रा के सापेक्ष गुरू दुगुन की, प्लुत तिगुन की तथा काकपद चौगुन की लयकारी प्रदर्शित करेंगे जो कि गुरू, प्लुत एवं काकपद को लघु में परिवर्तित करके प्राप्त होगी–

लघु	गुरू	प्लुत	काकपद
1	ऽ (1+1)	ऽ'(। । ।)	+ (1+1+1+1)

अतः एक मात्रा में दो मात्रा दुगुन, एक मात्रा में तीन मात्रा तिगुन एवं एक मात्रा में चार मात्रा चौगुन की लयकारी कहलाएगी। ताल की एक आवृत्ति में दुगुन दो बार, तिगुन तीन बार तथा चौगुन चार बार प्रयोग की जाएगी इसके विपरीत एक आवृत्ति की दुगुन, तिगुन एवं चौगुन में ताल की आवृत्ति के आधे भाग 1/3 एक तिहाई भाग तथा 1/4 एक चौथाई भाग में लयकारी प्रयोग होगी।

दुगुन, तिगुन, चौगुन लयकारी के अतिरिक्त भी आड़, कुआड, बिआड लयकारी का प्रयोग वर्तमान के संगीत में किया जाता है। आड़ लयकारी तिगुन की आधी अतः डेढ़ गुन की लयकारी जिसका अर्थ एक मात्रा में डेढ मात्रा है। जिसको 3/2 से प्रकट करते हैं। कुआड लयकारी सवागुन की लयकारी है अर्थात 1 मात्रा में सवा मात्रा जिसे 5/4 से प्रकट करते हैं (चार मात्रा में पांच मात्रा)। बिआड़ लयकारी पौने दो गुन की लयकारी है अर्थात एक मात्रा में पौने दो मात्रा जिसको 7/4 से प्रकट करते हैं (चार मात्रा में सात मात्रा)।

1.12 यति

यति का उल्लेख सर्वप्रथम भरत ने नाट्यशास्त्र में निम्न श्लोक के माध्यम से किया :–

लयप्रवृत्त वर्णानामक्षराणामक्षराणाम थगपि वा(च)।
नियमो या(यो) यतिः भात तु गीत वाद्यसमाश्रया।।

अर्थात वर्णों और अक्षरों में लय के लक्ष्य का बोध कराने वाला नियम यति कहलाता है। यति, गीत एवं वाद्य के आश्रित होती है।

शारंगदेव ने यति की परिभाषा निम्न श्लोक के माध्यम से की :–

''लयप्रवृत्तिनियमों यतिरित्याभिधीयते''

जिसके अनुसार लय प्रयोग के नियम को यति कहा है।

पं0 दामोदर ने भी संगीत दर्पण में संगीत रत्नाकर की परिभाषा को स्वीकारा किया तथा उसमें भी उपरोक्त संगीत रत्नाकर में दिए गए श्लोक का उदघृत किया। भरत ने तीन प्रकार की यति का उल्लेख किया स्रोतोगतो, गोपुच्छा तथा समायति। संगीत रत्नाकर में भी उक्त तीन यति का ही उल्लेख है परन्तु संगीत दर्पण में पांच यति समा, स्रोतोगता, मृदंगा, पिपिलिका तथा गोपुच्छा का उल्लेख किया गया, जिसका समर्थन बाद में संगीत पारिजात, तालदीपिका आदि ने किया गया।

अतः लय प्रयोग के नियम को यति कहते हैं और वह पांच प्रकार समा, स्रोतावता, मृदंगा, पिपिलिका तथा गोपुच्छा की होती है जिनके तीन लय भेद विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय के प्रयोग के नियम निश्चित किए गए हैं।

समायति – आरम्भ, मध्य तथा अन्त तक एक ही लय प्रयोग होने पर समायति कहलाती है। अतः आरम्भ से अन्त तक विलम्बित लय, आरम्भ से अन्त तक मध्य लय तथा आरम्भ से अन्त तक द्रुत लय का प्रयोग समायति है। इसको निम्न चित्र से प्रदर्शित कर सकते हैं।

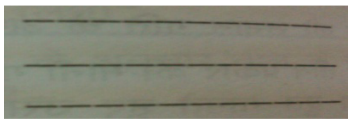

स्रोतागता – आरम्भ में विलम्बित बीच में मध्यलय तथा अन्त में द्रुत लय का प्रयोग होने पर स्रोतागता यति होती है जिसको निम्न चित्र से प्रदर्शित करेंगे।

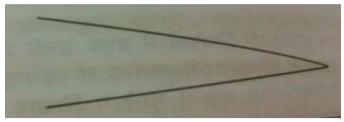

मृदंगा – इस यति का आधार मृदंगा का आकार है। जिसके अनुसार आरम्भ में द्रुत लय, बीच में विलम्बित लय तथा अन्त में फिर से द्रुत लय का अथवा आरम्भ एवं अन्त में मध्य एवं बीच में विलम्बित लय का प्रयोग होने पर मृदंगा यति होती है। इसमें केवल दो लय प्रयोग अतः आरम्भ एवं अन्त की लय के सापेक्ष मध्य भाग में यह विलम्बित होती है।

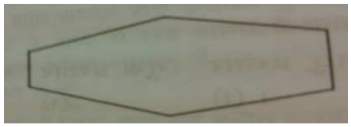

पिपिलिका – यह यति मृदंगा यति की विपरीत है तथा इस यति को चींटी से सम्बन्धित माना है। इसमें भी दो ही लय प्रयोग होती हैं। इसका आधार चीटी का आकार है जो कि आरम्भ एवं अंत का भाग मध्य भाग की अपेक्षा फैला हुआ होता है जो कि निम्न चित्र से स्पष्ट होगा। अतः आरम्भ एवं अन्त में विलम्बित या मध्य तथा मध्य स्थान में मध्य या द्रुत लय का प्रयोग होने पर पिपिलिका यति होती है।

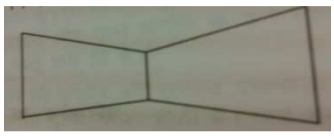

गोपुच्छा – इस यति का सम्बन्ध गोपुच्छ अथवा गाय की पूंछ के आकार से है जो कि निम्न चित्र से स्पष्ट होगा।

उक्त आकार के अनुसार आरम्भ में द्रुत, बीच में मध्य लय तथा अन्त में विलम्बित लय का प्रयोग होने पर यति गोपुच्छा कहलाती है तथा यह यति स्रोतगता की विपरीत है।

1.13 प्रस्तार

ताल के अंग द्रुत, लघु आदि (एक अथवा अधिक अवयवों) के आधार पर जो भेद बनते हैं उनको बनाने की विधि को प्रस्तार कहते हैं। प्लुत में द्रुत, लघु तथा गुरू को समाहित कर उनके विभिन्न संयोग से अनेक प्रकार बनते हैं इनको बनाने की विधि तथा कुल मात्रा संख्या प्रस्तार के अर्न्तगत आती है। प्लुत के उन्नीस प्रस्तार निम्न प्रकार से बनाए जाते हैं:–

1	S'	
2	। S	प्लुत को लघु तथा गुरू में खण्डित करके।
3	0 0 S	दूसरे प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित कर बना।
4	S ।	यह दुसरे प्रस्तार के अंग को उलट कर प्राप्त हुआ।
5	।̣ । ।	चौथे प्रस्तार के गुरू को दो लघु में विभाजित किया।
6	0 0 ।।	इसमें पांचवे प्रस्तार के बाई ओर के लघु को दो द्रुत में विभाजित किया।
7	0 । 0।	इसमें छठे प्रस्तार के द्रुत एवं लघु का स्थान बदलने से प्राप्त किया।
8	। 0 0̇ ।	इसमें भी सातवें प्रस्तार के द्रुत एवं लघु का स्थान परिवर्तन किया।
9	0 0 0 0 ।	आठवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत परिवर्तित किया।
10	0 S 0	नौवें प्रस्तार के अन्तिम लघु को दो द्रुत में विभाजित कर तथा बाद चार द्रुत से एक गुरू बना कर प्राप्त किया गया।
11	0 । । 0	दसवे प्रस्तार के गुरू को दो लघु में परिवर्तित कर।
12	। 0। 0	ग्यारवें प्रस्तार के लघु तथा द्रुत के स्थान परिवर्तित कर।
13	0 0 0 । 0	बारहवे प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित कर।
14	S 0 0	तेरहवें प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित करने पर छः द्रुत

		प्राप्त हुए जिससे पहले चार द्रुत को एक गुरू में परिवर्तित किया तथा बाद में दो द्रुत बचे।
15	। । 00	चौदहवें प्रस्तार के पहले गुरू को दो लघु में विभाजित किया।
16	00 ।00	पन्द्रहवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित किया।
17	0 । 0 0 0	सोलहवे प्रस्तार के तीसरे स्थान के लघु को दूसरे स्थान पर रखकर प्राप्त हुआ।
18	। 0 0 0 0	सत्रहवें प्रस्तार के दूसरे स्थान के लघु को प्रथम स्थान पर रखकर प्राप्त हुआ।
19	0 0 0 0 0 0	अठारवें प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित कर प्राप्त हुआ।

इस प्रकार द्रुत का एक प्रस्तार, लघु के दो प्रस्तार तथा गुरू के छः प्रस्तार बन सकते हैं।

द्रुत – 0
लघु – पहला प्रस्तार – ।
दुसरा प्रस्तार – 00
गुरू – पहला प्रकार – S
दूसरा प्रकार – ।।
तीसरा प्रकार – 00।
चौथा प्रकार – 0। 0
पांचवा प्रकार – । 0 0
छठा प्रकार – 0 0 0 0

दूसरे प्रस्तार में गुरू को लघु में विभाजित किया गया, तीसरा प्रस्तार में दूसरे प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित किया तथा चौथे एवं पांचवे प्रस्तार में लघु को एक–एक कर बाई ओर स्थानांतरित किया गया तथा छठा एवं अन्तिम प्रस्तार लघु को भी दो द्रुत में विभाजित किया गया इस प्रकार गुरू के छः प्रस्तार प्राप्त किए गए। अतः प्रस्तार अंगों को खण्डित कर एवं उनके विभिन्न संयोंगों से देशी ताले बनी।

वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता – भारत में दो तालिपि उत्तर भारतीय तथा कर्नाटक ताल लिपि प्रचलित हैं। उत्तर भारतीय तालिपि में दस प्राण में से केवल लय, जाति, ग्रह, क्रिया तथा यति ही प्रयोग में आती है। लय संगीत के लिए आवश्यक अंग है। लय के तीन भेद विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय का प्रयोग किया जाता है तथा इसके अतिरिक्त अति विलम्बित तथा अति द्रुत का प्रयोग संगीत रचनाओं में होता है। द्रुत गति की तान, तोडे उत्तर भारतीय संगीत में रोचकता तथा आर्कषण उत्पन्न करते हैं। जाति का प्रयोग लयकारी प्रदर्शन में देखने को मिलता है। ध्रुपद, धमार गायन शैली में द्रुत गति की तानों का प्रयोग नहीं होता बल्कि संगीत रचना की लयकारी प्रस्तुत की जाती है। तबला तथा पखावज वादक वाद्य पर लयकारी का प्रदर्शन कर अपने कौशन का परिचय देते हैं। यति का प्रयोग तबला व पखावज की गत की रचनाओं मे होता है। प्रस्तार का कुछ अंश तबला के कायदे व रेले आदि के पल्टों में देखने को मिलता है। क्रिया के रूप में ताली तथा खाली का ही प्रयोग है। संगीत में वैचित्र के उद्देश्य से विषय ग्रह का प्रयोग भी किया जाता है।

कर्नाटक ताल में क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, लय, यति एवं प्रस्तार का वर्तमान में भी प्रयोग हो रहा। क्रिया कर्नाटक संगीत का मुख्य अंग है। प्रत्येक संगीत प्रस्तुती में हाथ से ताली देकर ताल दिखाना आवश्यक होता है जो कि क्रिया के अर्न्तगत आता है। ताल को अंग द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है। समग्रह एवं विषम ग्रह का प्रयोग इस तालिपि में है। कर्नाटक ताल पद्धति जाति पर ही आधारित है तथा जाति भेद के आधार पर सात मूल तालों से पैंतीस तालों का निर्माण किया जाता है, जो कि प्रस्तार के अन्तर्गत आता है। लय प्रत्येक संगीत का अनिवार्य अंग तथा यति का प्रयोग कलाकार अपनी क्षमता के अनुसार करता है।

अभ्यास प्रश्न

क) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. सशब्द क्रिया की संख्या कितनी है?
2. निशब्द क्रिया की संख्या कितनी है?
3. मार्ग कितने प्रकार के हैं?
4. संगीत रत्नाकर में दी गई एक अंग की कौन सी तालें है?
5. अणु द्रुत तथा प्लुत को किन्ह संकेत चिन्ह से प्रदर्शित किया जाता है?
6. झपताल एवं रूपक ताल को अंगों के माध्यम से प्रस्तुत करें।
7. जाति की संख्या कितनी है?
8. 7/4 लयकारी को क्या कहते हैं?

1.14 सारांश

संगीत का आधार ताल है तथा ताल के निरूपण का आधार प्राचीन संगीत शास्त्रीय द्वारा निर्धारित दस प्राण है। प्रस्तुत इकाई में आपने ताल के इन दस प्राणों का विस्तृत अध्ययन किया तथा आप ताल एवं ताल के निरूपण के सिद्धान्त को ताल के दस प्राण के माध्यम से समझ गए होंगे। ताल के दस प्राण यद्यपि प्राचीन मार्गी तथा देशी तालों के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत किए गए परन्तु इन प्राणों के अध्ययन से वर्तमान ताल प्रकरण में दिशा निर्देश प्राप्त होता है जिससे ताल पद्धति को समर्थ किया जा सकता है। वर्तमान ताल को समझने के लिए उनके प्राचीन मूल स्वरूप को समझने की आवश्यकता है जो कि आपने इस इकाई के माध्यम से समझा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अपनी क्षमता अनुसार ताल के नए प्रयोग तथा रचनाओं के निर्माण का प्रयास करेंगे।

1.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. चार
2. चार
3. चार
4. आदिताल एक लघु ।, करूण ताल एक गुरू ऽ
5. अणुद्रत ◡ प्लुत ऽ'
6. झपताल ऽ ऽ' ऽ ऽ' रूपक – ऽ' ऽ ऽ
7. पांच
8. बिआड लयकारी

1.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेन, अरूण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, रायपुर, म0प्र0।
2. चौधरी, सुमद्रा, भारतीय संगीत में ताल और लय विधान।
3. स्वामी पागलदास, ताल के दस प्राण, तबला अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।

1.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में काल, मार्ग, क्रिया एवं अंग की व्याख्या कीजिए।
2. लय, जाति, यति तथा प्रस्तार की वर्तमान सन्दर्भ में व्याख्या कीजिए।
3. वर्तमान सन्दर्भ में ताल के दस प्राण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 2 – संगीतज्ञों(पं0 अयोध्या प्रसाद, उ0 हबीबुद्दीन खां, पं0 स्वपन चौधरी, पं0 कण्ठे महाराज, उ0 मसीत खां, उ0 जाकिर हुसैन व पं0 गामा महाराज) का जीवन परिचय

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संगीतज्ञों का जीवन परिचय
- 2.3.1 पं0 अयोध्या प्रसाद
- 2.3.2 उ0 हबीबुद्दीन खां
- 2.3.3 पं0 स्वपन चौधरी
- 2.3.4 पं0 कण्ठे महाराज
- 2.3.5 उ0 मसीत खां
- 2.3.6 उ0 जाकिर हुसैन
- 2.3.7 पं0 गामा महाराज

2.4 सारांश
2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0टी0–201) के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप ताल के दस प्राणों से परिचित हो चुके होंगे।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार व प्रसार में अनेक संगीतज्ञों का हाथ है। प्रस्तुत इकाई में कुछ प्रसिद्ध तबला वादकों के जीवन पर प्रकाश डाला जाएगा। भारतीय संगीत के क्षेत्र में उनकी गहन साधना और उनके विचारों को भी सविस्तार बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप महान संगीतज्ञों(तबला वादकों) के महत्वपूर्ण योगदान को समझ सकेंगे तथा यह भी जान पाएंगे कि एक आम आदमी से एक संगीतज्ञ बनने का सफर कितना कठिन है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बता सकेंगे कि संगीतज्ञों (तबला वादकों) का भारतीय शास्त्रीय संगीत में क्या महत्व है।
- जान सकेंगे कि तबले के विद्वानों ने क्या–क्या आविष्कार व रचनाएँ की।
- समझ सकेंगे कि संगीतज्ञ बनने के लिए कितने कठोर नियमों का पालन व संघर्ष करना पड़ता है।
- उनके जीवन से प्रेरण लेकर, उसी राह में अग्रसर हो पाएंगे।

2.3 संगीतज्ञों का जीवन परिचय

2.3.1 पं0 अयोध्या प्रसाद :–

जन्म – पं0 अयोध्या प्रसाद जी 5 अगस्त 1891 को दतिया(मध्य प्रदेश) को एक संगीत परिवार में जन्में।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – अयोध्या प्रसाद का नाम पखावज वादन के क्षेत्र में बहुत आदर के साथ लिया जाता है। आप कुदऊ सिंह महाराज की परम्परा से सम्बन्धित हैं। अयोध्या प्रसाद की पखावज की शिक्षा अपने दादा राम प्रसाद से प्रारम्भ हुई। पं0 राम प्रसाद की मृत्यु के पश्चात आपकी पखावज की शिक्षा अपने पिता पं0 गया प्रसाद के सानिध्य में चली। पं0 राम प्रसाद, कुदऊ सिंह महाराज के अनुज थे। पं0 गया प्रसाद दतिया में रहे और वहीं पर अयोध्या प्रसाद की शिक्षा एवं अभ्यास, पं0 गया प्रसाद के संरक्षण में चला। अयोध्या प्रसाद रामपुर दरबार में रहे। रामपुर नवाब संगीत के विशेष प्रेमी थे एवं इनके दरबार में गायक वादक सभी रहा करते थे। रामपुर दरबार में ही अयोध्या प्रसाद को उस्ताद वजीर खां एवं नवाब छम्मन खां साहब का सानिध्य प्राप्त हुआ। इनसे अयोध्या प्रसाद ने अनेक ध्रुवपद एवं धमार की रचनाएं प्राप्त की। पं0 अयोध्या प्रसाद का मानना था कि पखावज वादक को ध्रुवपद एवं धमार की रचनाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है तभी वह कुशल पखावज संगतकार बन सकता है। रामपुर दरबार में देश के सभी संगीतकार आया करते थे एवं वहां पर पं0 अयोध्या प्रसाद सभी के साथ संगत दिया करते थे। इस प्रकार इनका पूरे देश में नाम हुआ एवं पखावज वादन में प्रथम श्रेणी के पखावज वादक के रूप में स्थापित हो गए।

विशेषताएं – पं. अयोध्या प्रसाद ने अपने समय के सभी प्रतिष्ठित संगीत समारोह में पखावज वादन कर खूब ख्याति अर्जित की। इसके अतिरिक्त आपके कार्यक्रम देश के सभी आकाशवाणी केन्द्रों से प्रकाशित भी होते रहे। आपकी वादन शैली में कुदऊ सिंह घराने की सभी विशेषताएं विद्यमान थी। लम्बे–लम्बे बोलों को सफाई से बजाकर झड़ी सी लगा देना इनकी विशेषता थी। इनके वादन में पांच, सात, दस, बीस एवं चौबीस आवृत्ति की परनें विशेष आकर्षित करती थी। इसके साथ मेघ परन, घटाटोप परन, इन्द्रधनुषी आदि परनें भी आपके वादन शैली की विशेषता थी, जो कि साहित्य की दृष्टि से भी उच्चकोटी की हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको कई पुरस्कार प्राप्त हुए। पं. अयोध्या प्रसाद को उनके पखावज वादन के लिए भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सम्मान पदमश्री से अलंकृत किया गया।

शिष्य परम्परा – पं. अयोध्या प्रसाद के चार पुत्र शीतल प्रसाद, नारायण प्रसाद, कुन्दन प्रसाद एवं रामजी लाल हुए। नारायण प्रसाद एवं कुन्दन प्रसाद का अल्पआयु में ही निधन हो गया। अतः इनकी परम्परा को उनके अन्य दो पुत्रों शीतल प्रसाद एवं रामजी लाल ने तथा इनके पुत्र, पौत्र एवं शिष्यों ने आगे बढ़ाया। शीतल प्रसाद के दो पुत्र सूर्यकान्त एवं प्रभाकान्त हुए। सूर्यकान्त के भी दो पुत्र चितरंजन देव एवं रविरंजन देव हुए, जिन्होंने पखावज वादन मे ख्याति अर्जित की। पं. अयोध्या प्रसाद के अन्य पुत्र रामजी लाल के भी दो पुत्र, भुपेन्द्र कुमार एवं अनुराग कुमार हैं जो कि पं. अयोध्या प्रसाद की परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। पं अयोध्या प्रसाद की परम्परा को निम्न सारिणी से एक दृष्टि में समझा जा सकता है।

कुदऊ सिंह महाराज

⇩

राम प्रसाद(भाई)

⇩

गया प्रसाद (पुत्र)

⇩

अयोध्या प्रसाद(पुत्र)

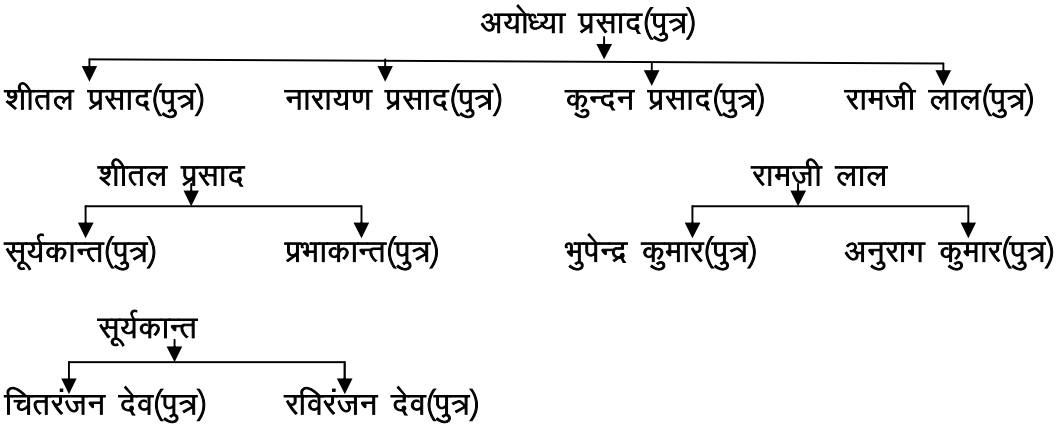

पं अयोध्या प्रसाद की शिष्य परम्परा में गोपाल दास शर्मा(देहली), आचार्य कैलाश चन्द्रदेव बृहस्पति, रमाकान्त पाठक(लखनऊ), तोताराम शर्मा एवं सरदार त्रिलोक सिंह विशेष उल्लेखनीय हैं।
मृत्यु – 28 दिसम्बर 1977 को आपका निधन हो गया।

2.3.2 उ0 हबीबुद्दीन खां :–

जन्म – आपका जन्म सन् 1899 में मेरठ के एक संगीत परिवार में हुआ।
संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – आपका सम्बन्ध अजराडा घराने के उस्ताद हस्सू खां से है। उस्ताद हस्सू खां के पुत्र उ0 शम्भू खां एवं इनके पुत्र उ0 हबीबुद्दीन खां हुए। उ0 हबीबुद्दीन खां ने अजराडे घराने की शिक्षा अपने पिता उस्ताद शम्भू खां से प्राप्त की। इसके अतिरिक्त आपने तबले की शिक्षा देहली घराने के उस्ताद नत्थू खां एवं फर्रूखाबाद घराने के उस्ताद मुनीर खां से भी प्राप्त की। इस प्रकार आपके वादन शैली में अजराडा, देहली एवं फर्रूखाबाद बाज एक गुलदस्ते के रूप में विद्यमान था। आप एकल वादन के साथ–साथ संगति में भी निपुण थे। उ0 हबीबुद्दीन खां, उस्ताद अहमदजान थिरकवा के समकालीन थे तथा इनकी आपस में स्वस्थ स्पर्धा भी रहती थी। आपने कई संगीत मंचों में अपनी कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।
विशेषताएं – आपके वादन शैली की विशेषता दाएं एवं बाएं तबले की लड़न्त एवं बाएं तबले का विशेष प्रयोग था। घेघे तथा घेतक बोल आप बहुत तैयारी के साथ बजाया करते थे। घेतक बोल के प्रयोग से आपने फाक्ते (कबूतर) उड़ाने का बोल तैयार किया था, जो आपकी विशेष पहचान बन गया था। देहली घराने के कायदे भी आप तैयारी से बजाया करते थे।
पुरस्कार एवं सम्मान – लखनऊ संगीत सम्मेलन तथा नौचन्दी संगीत सम्मेलन मेरठ में आपको संगीत–सम्राट की उपाधि से अलंकृत किया गया था। आपको कई और पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है।
शिष्य परम्परा – उस्ताद हबीबुद्दीन खां के केवल एक पुत्र मन्जु खां हैं। उस्ताद हबीबुद्दीन खां की वादन शैली की परम्परा को इनके पुत्र के अलावा इनके शिष्य सुधीर कुमार सक्सेना(बडौदा), हजारी लाल कत्थक(मेरठ), मनमोहन सिंह(दिल्ली), अमीर मोहम्मद खां, यशवन्त केलकर(मुंबई), महाराज बनर्जी(कलकत्ता), स्वामी दयाल(इलाहाबाद), गोवर्धन मालवीया, पप्पन खां, करन सिंह, राम प्रवेश सिंह(दरभंगा), रामधुर्व तथा सुन्दरलाल गंगानी कत्थक आदि आगे बढ़ा रहे हैं।
मृत्यु – सन् 1965 में आपको पक्षाघात हुआ जिससे आपका वादन रूक गया और 1 जुलाई 1972 में आपका निधन हो गया।

2.3.3 पं0 स्वपन चौधरी :–

जन्म – पं0 स्वपन चौधरी का जन्म सन् 1947 में कोलकाता में हुआ था। आपके परिवार में संगीत का माहौल था।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – आपने 5 वर्ष की उम्र से तबले की शिक्षा लेनी शुरू की। पं0 स्वपन चौधरी के गुरू पं. सन्तोष कृष्ण विश्वास थे। पं. सन्तोष जी तबले के लखनऊ घराने से संबंधित थे। स्वपन जी बाल्यावस्था से ही संगीत मंचों में अपने कार्यक्रम देने लगे। आपने सर्वप्रथम तानसेन संगीत प्रतियोगिता में भाग लिया एवं आपको इसमें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। उस समय आपकी उम्र सिर्फ 8 वर्ष थी। इसके पश्चात आप लगातार सफलता की सीढ़ियां चढते चले गए। आपने संगीत की अनेक प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग किया एवं प्रथम स्थान प्राप्त किया। इनमें आकाशवाणी द्वारा आयोजित संगीत प्रतियोगिता भी शामिल थी। आपने देश के सभी प्रतिष्ठित संगीत मंचों में अपने तबला वादन का सफल प्रदर्शन किया है। आप संगीत के अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भी अपनी प्रस्तुती दे चुके हैं और भारतीय शास्त्रीय संगीत का लोहा मनवाया है।

विशेषताएं – आप तबला वादन के दोनों पक्षों–एकल वादन व संगत में माहिर हैं। आपने भारतीय शास्त्रीय संगीत के लगभग सभी स्थापित कलाकारों के साथ संगत की है। जैसे उस्ताद अली अकबर खां, पंडित रवि शंकर, उस्ताद विलायत खान, पंडित निखिल बनर्जी, स्वर्गीय उस्ताद अमीर खान, उस्ताद अमजद अली खान, पंडित भीमसेन जोशी, पंडित जसराज, एल. शंकर, डॉ. बालमुरली कृष्ण, पंडित बिरजू महाराज, डॉ. एल. सुब्रमण्यम, लक्ष्मी शंकर, पंडित वी0जी0 जोग आदि। कुछ संगीतकारों जैसे स्व. उस्ताद अमीर खां, उस्ताद अली अकबर खां और स्व. पं0 निखिल बनर्जी के आप प्रिय तबला संगतकार रहें है। आपकी सांगीतिक सूझ–बूझ बडे कमाल की है और इसके लिए आप प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान में पं0 स्वपन चौधरी जी अली अकबर कॉलेज ऑफ म्यूजिक, सैन रैफियल, कैलिफोर्निया में डायरेक्टार ऑफ द डिपार्टमेंट ऑफ परकशन(निदेशक, अवनद्ध वाद्य विभाग) के पद पर हैं। साथ ही साथ आप अली अकबर स्कूल ऑफ म्यूजिक, बाजल(Basel), स्विट्जरलैण्ड में तबला प्राध्यापक पद को भी संभाले हुए हैं। आप कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ द आर्टस, वेलेंसिया, कैलिफोर्निया के शिक्षण स्टाफ के सदस्य भी हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको सन् 1997 में संगीत नाट्क अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आपको अमेरिकन अकादमी का कलाकार पुरस्कार भी प्राप्त है।

2.3.4 पं0 कण्ठे महाराज :–

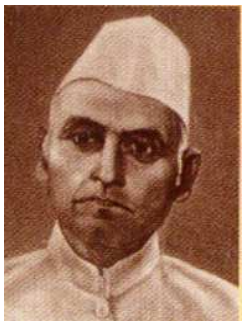

जन्म – आपका जन्म 1880 में वाराणसी में हुआ। कण्ठे महाराज की कर्मस्थलि वाराणसी रही।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – कण्ठे महाराज का सम्बन्ध बनारस घराने के भैरो सहाय मिश्र की परम्परा से है जो कि बनारस घराने के संस्थापक पं. राम सहाय मिश्र के भतीजे थे। कण्ठे महाराज की तबले की शिक्षा भैरो सहाय मिश्र के पुत्र एवं शिष्य पं0 बलदेव सहाय के द्वारा हुई। पं0 बलदेव सहाय, पं. कण्ठे महाराज की बुआ के बेटे थे, अतः कण्ठे महाराज पं बलदेव सहाय को भैया जी कहकर सम्बोधित किया करते थे। कण्ठे महाराज ने बनारस घराने की वादन शैली के प्रचार एवं इसके विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रारम्भ में तीन वर्षों तक आपकी शिक्षा पं. बलदेव सहाय जी से वाराणसी में हुई। पं. बलदेव सहाय द्वारा नेपाल दरबार में नौकरी करने के कारण एक वर्ष तक कण्ठे महाराज की शिक्षा में विघ्न आ गया। परन्तु इस बीच आपने अपने गुरू से प्राप्त शिक्षा पर कठोर परिश्रम किया एवं बाद में कण्ठे महाराज भी नेपाल चले गए। यहाँ पर कण्ठे महाराज की तबले की शिक्षा फिर से आरम्भ हो गई। नेपाल में कण्ठे महाराज ने चार वर्षों तक अपने गुरू के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की एवं उनके संरक्षण में कठिन अभ्यास किया। कण्ठे महाराज

बनारस घराने के प्रतिष्ठित गुरू एवं कलाकार के रूप में स्थापित हुए। पूरे भारतवर्ष में आपने तबला एकल वादन के कार्यक्रम के साथ अपने समकालीन गायक, वादक एवं नृत्यकार के साथ संगति कर संगीत जगत में शीर्ष स्थान प्राप्त किया।

विशेषताएं – कण्ठे महाराज के वादन में बनारस बाज की सभी विशेषताओं जैसे–उठान, चाल, बांट, परन आदि विद्यमान थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने नृत्य से प्रभावित होकर तबले पर प्रयोग करने के लिए कई टुकड़े भी निर्मित किए, जिनका प्रयोग वर्तमान में कण्ठे महाराज के शिष्यों द्वारा सुंना जा सकता है। लग्गी–लडी बजाने में भी कण्ठे महाराज प्रवीण थे। कण्ठे महाराज तबला वादन वज्रासन की बैठक में किया करते थे, जिसका अनुसरण बनारस घराने के अधिकतम कलाकारों ने किया है।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको 1961 में संगीत नाटक अकादमी आवार्ड से सम्मानित किया गया। सन् 1954 में आपने आल इण्डिया तानसेन संगीत सम्मेलन में लगभग ढ़ाई घण्टे तक तबला वादन प्रस्तुत कर एक रिकार्ड बनाया एवं श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया था।

शिष्य परम्परा – कण्ठे महाराज ने अपने भतीजे पं. किशन महाराज को गोद ले लिया था तथा किशन महाराज को अपना सम्पूर्ण ज्ञान स्थानान्तरित किया। कण्ठे महाराज की बनारस बाज की परम्परा को पं. किशन महाराज के अतिरिक्त उनके शिष्यों आशुतोष भट्टाचार्य, विश्वनाथ घोष, रामभजनदास, रामनाथ मिश्र, बद्री प्रसाद, ननकु महाराज, शीतल प्रसाद मिश्र, शारदा सहाय, कृष्ण कुमार गांगुली, भगवान पांडे आदि ने आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मृत्यु – कण्ठे महाराज ने बनारस में 1 अगस्त 1969 में अन्तिम सांस ली।

2.3.5 उ0 मसीत खां :–

जन्म – उस्ताद मसीत खां का जन्म एक संगीत परिवार में उ0 नन्हें खां के वहां हुआ।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – उस्ताद हाजी विलायत अली ने फर्रूखाबाद घराने की नींव डाली। इनके पुत्र एवं शिष्यों ने फर्रूखाबाद घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया। हाजी विलायत अली के एक पुत्र नन्हें खाँ थे, जिनके पुत्र मसीत खां ने अपने घराने की परम्परा को अपने पुत्र करामत उल्लाह खां एवं अनेक शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ाया। उ0 मसीत खां का पूरा नाम मसीत उल्लाह था, परन्तु ये संगीत जगत में मसीत खां के नाम से प्रसिद्ध हुए। उ0 मसीत खां ने संगीत की शिक्षा अपने पिता नन्हें खां से प्राप्त की। मसीत खां रामपुर दरबार में रहे, जहां पर इनको हिन्दुस्तान के सभी संगीतकारों का सानिध्य प्राप्त हुआ। रामपुर के नवाब हामिद अली की मृत्यु के पश्चात आपने रामपुर छोड़ दिया एवं कलकत्ता आकर बस गए। जीवन के अन्त तक यहीं पर आपने फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

विशेषताएं – रेले, रौ, चाल एवं गतें आपके वादन शैली की विशेषता रही हैं। आपने कई गतों का भी निर्माण किया। मसीत खां का तकतक एवं धिरधिर बोल बहुत तैयार था जो कि बजने पर मधुर सुनाई देता था। दर्जेदार गतें भी आपके वादन की विशेषता थी।

शिष्य परम्परा – मसीत खां की परम्परा को वर्तमान में उनके पौत्र साबिर खां आगे बढ़ा रहे हैं। साबिर खां भी कलकत्ता में ही निवास करते हैं। मसीत खां की वंश परम्परा के अतिरिक्त इनके शिष्यों ने भी तबला वादन के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की जिनमें पं. ज्ञान प्रकाश घोष, रावेन्द्र घोष, कन्हाई दत्त, राम चन्द्र बोराल, हिरेन्द्र चक्रवर्ती, जीवन खां, मुन्ने खां(लखनऊ), रतन घोष, निर्मल बनर्जी, हेमन्द्र शंकर, मणीनेन्द्र बनर्जी(मान्टो बाबू), हिरेन किशोर राय चौधरी तथा अजीम बख्श खां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मसीत खां की वंश परम्परा को निम्न वंश वृक्ष से समझा जा सकता है :–

उस्ताद हाजी विलायत → अली उ0 नन्हें खां(पुत्र) → उ0 मसीत खां(पुत्र) →
↓
उ0 साबिर खां(पुत्र) ← उ0 करामातउल्लाह खां(पुत्र) ←

2.3.6 उ0 जाकिर हुसैन :–

जन्म – उस्ताद जाकिर हुसैन का जन्म 1 मार्च 1951 को मुंबई में हुआ। आप उस्ताद अल्लारक्खा के पुत्र हैं, जो पंजाब घराने के प्रतिनिधि तबला वादक रहे।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – उ0 जाकिर हुसैन ने तबले की शिक्षा अपने पिता उस्ताद अल्लारक्खा से प्राप्त की। बचपन से ही आप संगीत के प्रति समर्पित हो चुके थे। आपके घर में उस समय के स्थापित लगभग सभी कलाकारों का आना था। इस कारण आपको इनके साथ संगत का मौका मिलता रहा। इनमें से पं. रविशंकर, उ. अली अकबर और उ. विलायत खां आदि का नाम प्रमुख है। साथ ही साथ आपको देश के सभी प्रतिष्ठित मंचों में प्रदर्शन का अवसर भी आसानी से मिलता रहा। आपने भारतीय शास्त्रीय संगीत के लगभग सभी स्थापित कलाकारों के साथ संगत की है। जैसे उस्ताद अलीअकबर खां, पंडित रवि शंकर, उस्ताद विलायत खां, पंडित निखिल बनर्जी, उस्ताद अमजद अली खान, पंडित भीमसेन जोशी, पंडित जसराज, पंडित बिरजू महाराज, डॉ.एल.सुब्रमण्यम, पंडित वी0जी0 जोग, पं. शिवकुमार शर्मा, पं. हरिप्रसाद चौरसिया आदि। आपने कई अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में भी अपने तबला वादन का उत्कृष्ठ नमूना पेश किया है तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत का लोहा मनवाया है।

विशेषताएं – आप तबला वादन के दोनों पक्षों–एकल वादन व संगत में माहिर हैं। आप संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन एवं नृत्य के साथ संगति में पारंगत हैं। विशेष रूप से आप वादन एवं नृत्य की संगति के लिए विख्यात हैं। आपकी अनेक विशेषताओं में उत्कृष्ट तैयारी, सांगीतिक सूझ–बूझ, ध्वनि नियंत्रण की क्षमता, रचनाओं का उचित जवाब देने की क्षमता, दाएं व बाएं दोनों पर पूर्ण पकड़ व दोनों का पूर्ण प्रयोग आदि हैं। अपने हंसमुख व मिलनसार स्वभाव के कारण संगीतकारों में आपका विशेष स्थान है। दक्षिण भारतीय संगीत की भी आप अच्छी समझ रखते हैं। जितनी पकड़ आपकी भारतीय शास्त्रीय संगीत में है उतनी ही पाश्चात्य संगीत में भी है। इन विशेषताओं के कारण आप दक्षिण व पाश्चात्य संगीत के कलाकारों के साथ उच्च कोटि की संगत करते हैं, जिसको हम विभिन्न माध्यमों से सुन सकते हैं। आपने अपने प्रयासों व वादन से तबले को नई ऊंचाई दी है। साथ ही साथ तबला राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अपनी अलग पहचान बना सका है। आपके प्रदर्शन की अनेक सी0डी0/डी0वी0डी0 आदि आसानी से उपलब्ध हैं।

आपका संबंध फिल्म जगत से भी रहा है। आपने अनेक फिल्मों में संगीत निर्देशन किया है। आपने साज नामक फिल्म में संगीत निर्देशन के साथ–साथ अभिनय भी किया है। आपने फिल्मों के संगीत के लिए तबला वादन भी किया है। आपके द्वारा विदेशी भाषा की फिल्मों के साउण्डट्रैक भी तैयार किए गए हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाजा गया है, जिनका विवरण निम्न है :–

1. सन् 1990 में संगीत नाटक अकादमी आवार्ड
2. सन् में इंडो–अमेरिकन आवार्ड
3. सन् 1988 में पद्मश्री
4. सन् 2002 में पद्मभूषण
5. सन् 1999 में युनाइटेड स्टेटस नेशनल एनडॉवमेंट फॉर द ऑर्टस नेशनल हेरिटेज फैलोशिप
6. सन् 2006 में कालिदास सम्मान
7. 8 फरवरी 2009 को 51 ग्रैमी आवार्ड में कन्टेमप्ररी वर्ल्ड एलबम कैटगरी में 'ग्लोबल एलबम प्रोजेक्ट' के लिए ग्रैमी आवार्ड(साझा)

2.3.7 पं. गामा महाराज :–

जन्म – पं0 गामा महाराज का जन्म सन् 1905 में एक संगीत परिवार में हुआ। आपका नाम पं0 रामायण प्रसाद मिश्र है। आपके पिता पं. बिक्कू महाराज उर्फ विक्रमादित्या मिश्र थे जो अपने समय के उच्चकोटि के तबला वादक थे। आपको खलीफा की उपाधि प्राप्त थी। आपके घर में धार्मिक विचारधारों की प्रधानता थी और इस कारण आपका नाम पडा रामायण।

आपका नाम गामा महाराज पडने के पीछे एक तथ्य है, जो इस प्रकार है–उस समय भारत में पहलवानी में गामा पहलवान का डंका बजता था। कोई भी पहलवान उनके आगे टिक नहीं पाता था। जो भी पहलवान उनसे लडता या तो वह हार जाता या फिर लडने से ही मना कर देता। तबले में रामायण प्रसाद मिश्र की स्थिति भी गामा पहलवान जैसी थी। इसी कारण विद्वान कहने लगे थे कि 'रामायण मिश्र अपनी कला के गामा हैं'। इस प्रकार लोग आपको गामा महाराज कह कर पुकारने लगे और आपका यही नाम प्रसिद्ध हो गया।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – आपका जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जो कई वर्षों से संगीत की सेवा में लगा था। इस परिवार में स्वर व ताल का अनूठा संगम था, इस कारण आपने जन्म से ही संगीत को सुना व उसकी अराधना की। आपके परिवार में कई उच्चकोटि के संगीतकार हुए जैसे तबला सम्राट स्व. रामशरण जी मिश्र(प्रपितामह)'मस्तराम', स्व. दरगाही मिश्र(पितामह)'संगीत नायक', पं. बिक्कू महाराज(पिता)'खलीफा'। आपने 5 वर्ष की उम्र से अपने पिता पं. बिक्कू महाराज जी से तबले की विधिवत् शिक्षा लेनी प्रारम्भ की। आपने कठोर परिश्रम व साधना के बल पर सिर्फ 13 वर्ष की उम्र में तबला वादन के शिखर को छू लिया था, जिसको सुनकर बिना तारीफ करें रहा ना जा सके। जब आप 13 वर्ष के थे तो दुर्भाग्यवश आपके पिता को लकवा मार गया। लेकिन तब तक आप संगीत जगत में अपनी पहचान बना चुके थे।

आपको अनेक राजाओं जैसे बनारस, दरभंगा, रामपुर, रायगढ़, मैमनसिंह, मुक्तागाछी और नेपाल आदि का राजाश्रय प्राप्त था। आपने कई मंचों में अपने तबला वादन का सफल प्रदर्शन किया। आपने कई संगीतकारों के साथ संगत भी की जिनमें प्रमुख हैं–उ0 फैय्याज खां, उ0 अब्दुल करीम खां, उ0 इनायत खां, उ0 हाफिज अली खां, उ0 अलाउद्दीन खां, विद्याधरी देवी, सिद्धेश्वरी देवी, जद्दन बाई, पं0 अच्छन महाराज, पं0 शम्भु महाराज, पं0 डी.वी. पलुस्कर, पं0 विनायक पटवर्धन, उ0 बड़े गुलाम अली खां, उ0 अमीर खां आदि। आपका सभी संगीतकारों से मधुर संबंध था।

विशेषताएं – आप एकल वादन व संगत(गायन, तन्त्र एवं सुषिर वाद्य, नृत्य) दोनों में समान रूप से पारंगत थे। पं0 विजयशंकर मिश्र जी के अनुसार–'वादन में शुद्धता, कर्णप्रियता, बोलों की प्रकृति के अनुसार उनका वादन, कठिन और विकट लयकारियों का अत्यन्त सहज प्रयोग और भिन्न–भिन्न घरानों के दुर्लभ बोलों का विपुल भण्डार इनकी विशेषता थी।' विद्वान कहते थे कि आपका तबला बोलता नहीं गाता है। पं0 विजयशंकर मिश्र जी अपनी पुस्तक 'तबला पुराण' में लिखते हैं कि–'महाराज जी का रेला सुनकर ऐसा लगता था जैसे पर्वत शिखर से कल–कल करता पानी का रेला चला आ रहा हो। रौ को बांधकर जब वह बाएं को क्रमशः उठाते और दबाते थे तो उसमें वेगवती नदी का शोर सुनाई देता था। इसी प्रकार जब वह टुकड़े और परणों को बजाते थे तो तिहाई का अन्तिम अंश सम पर इस प्रकार आता था जैसे कोई विशाल पर्वत खण्ड धरती पर आ गिरा हो।' आप अनु संगति व सह संगति के पक्षधर तो थे ही किन्तु साथ ही साथ आप भराव की संगति(संगति का एक प्रकार) को भी तव्वजो देते थे। आपको गायन एवं वादन(तन्त्र वाद्य) की अनेक दुर्लभ रचनाएं याद थी। खाली समय में आप भजन, गजल, ठुमरी, कवित्त आदि लिखा भी करते थे।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। आपको संगीत समाज 'आरा' द्वारा तबला शिरोमणि की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

शिष्य परम्परा – आपके पुत्र प्रो. रंगनाथ मिश्र, पं. सुरेन्द्र मोहन मिश्र, विजय शंकर मिश्र, अजेय शंकर मिश्र, उदय शंकर मिश्र एवं अभय शंकर मिश्र देश के प्रतिष्ठित संगीतकारों में से हैं।

मृत्यु – पं0 गामा महाराज को लगभग 32 वर्ष की उम्र में लकवा मार गया। इस कारण आप संगीत मंचों से दूर हो गए। लेकिन आपने हार नहीं मानी और कई वर्षों बाद जब आप इस बिमारी से उबरे तब तक आपकी उंगुलियां जवाब दे बैठी थी। फिर भी आपने संगीत नहीं छोडा और संगीत शिक्षण का कार्य करने लगे। यह संगीत साधक 16 जनवरी, 1974 सदा सदा के लिए संगीत के आकाश में अमर हो गए।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1) पं0 अयोध्या प्रसाद ..... की परम्परा से संबंधित हैं।
2) उ0 हबीबुद्दीन खां .....घराने से संबंध रखते हैं।
3) पं0 स्वपन चौधरी को ..... सन् में संगीत नाटक अकादमी आवार्ड से सम्मानित किया गया।
4) पं0 किशन महाराज के गुरू ..... थे।
5) उ0 मसीत खां ..... घराने से संबंधित थे।
6) उ0 जाकिर हुसैन ने ..... फिल्म में संगीत निर्देशन के साथ–साथ अभिनय भी किया है।
7) पं0 गामा महाराज को आरा संस्था द्वारा ..... उपाधि प्रदान की गई।

ग) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1) पं0 गामा महाराज की वादन विशेषताएं बताइए।
2) उ0 हबीबुद्दीन खां का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे कि संगीतज्ञों(तबला वादको) को कितने संघर्ष करने पढते हैं एक मुकाम तक पहुँचने में। शुरू से लेकर अन्त तक वे सिर्फ संगीत के बारे में सोचते हैं, संगीत की उपासना करते और सिर्फ संगीत ही प्रदान करते हैं। वे हमेशा इसी प्रयास में रहते हैं कि शास्त्रीय संगीत जन–जन तक कैसे पहुंचाया जाए और यह कैसे आम जन के बीच लोकप्रिय हो सके। संगीतज्ञ बनने के लिए आप में क्या–क्या गुण होने चाहिए यह भी आप इस इकाई से जान चुके होंगे।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) कुदऊ सिंह	2) अजराडा	3) 1997	4) पं0 कण्ठे महाराज
5) फर्रूखाबाद	6) साज	7) तबला शिरोमणि	

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1) मिश्र, पं0 विजयशंकर, *तबला पुराण*, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2) मिश्र, पं0 छोटेलाल, *ताल प्रबन्ध*, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3) गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *हमारे संगीत रत्न*, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
4) साभार गूगल।

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1) वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
2) श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय – 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1) पं0 अयोध्या प्रसाद, उ0 मसीत खां व पं0 गामा महाराज के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी वादन शैली का उल्लेख कीजिए।
2) उ0 हबीबुद्दीन खां, पं0 स्वपन चौधरी, पं0 कण्ठे महाराज, उ0 जाकिर हुसैन के जीवन परिचय का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 3 – संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 निबन्ध की व्याख्या
3.4 निबन्ध के अवयव
3.4.1 भूमिका
3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय की भूमिका
3.4.2 विषय वस्तु
3.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा
3.4.2.2 संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा
3.4.2.3 विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा
3.4.3 उपसंहार – संगीत शिक्षा विषय पर
3.5 सारांश
3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0टी0–201) के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप ताल के दस प्राणों का अध्ययन कर चुके हैं। आप संगीतज्ञों के जीवन व संगीत यात्रा से भी परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में निबन्ध लेखन के विषय में आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराया जाएगा। निबन्ध लिखते समय किन–किन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है यह भी इस इकाई में वर्णित है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निबन्ध लेखन की विधि तथा निबन्ध लेखन के अवयवों से परिचित होंगे। आप किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- निबन्ध लेखन के अवयवों का सही प्रयोग कर सकेंगे।
- अपनी लेखन शैली का विकास कर सकेंगे।
- किसी भी विषय में आप व्यवस्थित रूप से निबन्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.3 निबन्ध की व्याख्या

निबन्ध के विषय में आपने पूर्व में काफी सुना है तथा प्राथमिक कक्षाओं से ही निबन्ध लेखन का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक स्तर पर निबन्ध का स्तर भी पृथक होता है। निबन्ध किसी विषय विशेष की समग्र रूप में व्यवस्थित व्याख्या है। निबन्ध में विषय से सम्बन्धित समस्त पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः निबन्ध में विषय की व्याख्या का स्वरूप व्यापक हो जाता है। विषय से सम्बन्धित पूर्व की उपलब्ध जानकारी को निबन्ध में समाहित कर उसका विश्लेषण किया जाता है और लेखक समालोचना के लिए भी स्वतंत्र रहता है। निबन्ध के माध्यम से लेखक व्याप्त भ्रान्तियों को भी दूर करने की चेष्टा करता है। इसी सन्दर्भ में निबन्ध और लेख के अन्तर को भी समझने की आवश्यकता है।

लेख प्रायः समस्या को लेकर आरम्भ किया जाता है एवं समस्या का निराकरण ही किसी लेख का मूल उद्देश्य रहता है। विद्यालय स्तर पर आपको दृश्यों का आंखों देखा वर्णन निबन्ध के रूप में लेखन का अभ्यास करवाया गया है। परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर निबन्ध, विषय से ही सम्बन्धित रहता है और उस विषय के बारे में आपको समस्त जानकारी और यदि आवश्यक हो तो गुण–दोष के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। लेख सामान्य विषय पर वक्तव्य रूप में रहता है। निबन्ध लेखन अभ्यास से ही आप लेख लिखने एवं शोध पत्र लिखने में भी सक्षम होते हैं। अतः निबन्ध लेखन के अभ्यास से आपकी लेखन क्षमता बढ़ती है और आप अपने विचारों को कलम के माध्यम से प्रस्तुत करने की तकनीक भी विकसित कर पाते हैं। इस इकाई में स्नातकोत्तर स्तर के विषयों के निबन्ध की लेखन विधि पर चर्चा की जाएगी।

3.4 निबन्ध के अवयव

किसी भी विषय पर निबन्ध को प्रायः निम्न भागों में बांटकर विषय की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

1. भूमिका **2. विषयवस्तु** **3. उपसंहार**

3.4.1 भूमिका – इसके अन्तर्गत विषय के बारे में जानकारी देते हुए व्याख्या के अन्तर्गत आने वाले सन्दर्भों के बारे में बताते हैं। भूमिका के माध्यम से निबन्ध का स्वरूप पता चल जाता है। व्याख्या किन–किन बिन्दुओं पर केन्द्रित होनी है इसका संक्षिप्त परिचय भी भूमिका के माध्यम से दिया जाता है। भूमिका में विषय प्रवेश प्रस्तुत किया जाता है अर्थात विषय क्या है एवं विषय पर निबन्ध के माध्यम से हम विषय के सन्दर्भ में क्या–क्या चर्चा करेंगे।

उदाहरण के रूप में संगीत शिक्षा विषय के माध्यम से आपको निबन्ध की लेखन शैली से परिचित कराएंगे।

3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय पर भूमिका – प्राचीन काल से ही संगीत का सन्दर्भ हमें सामवेद से प्राप्त होता है तथा वैदिक समय में ऋचाओं के गान की शिक्षा गुरूमुख से देने की परम्परा थी और इस परम्परा का निर्वाह काफी समय तक रहा। संगीत का वास्तविक स्वरूप क्रियात्मक है। अतः इसकी शिक्षा भी क्रियात्मक रूप में देने से ही संगीत का स्वरूप स्पष्ट हो पाता है। यद्यपि संगीत से सम्बन्धित अवयवों की व्याख्या समय–समय पर विभिन्न संगीत मनीषियों के द्वारा दी जाती रही है परन्तु संगीत को क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए शिष्य को गुरूमुख से ही शिक्षा ग्रहण करना होती थी जिसके लिए गुरूकुल की व्यवस्था रहती थी। वर्तमान में संगीत शिक्षा का स्वरूप बदल चुका है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। संगीत को विषय के रूप में समझा जाने लगा है जिससे उसकी शिक्षा भी उसी के अनुरूप होने लगी है। जबकि संगीत को कला के रूप में ही समझने की आवश्यकता है। वर्तमान में संगीत हेतु शिक्षा के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन कर उनके गुण दोष पर इस निबन्ध के माध्यम से विचार किया जाएगा।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध की भूमिका उदाहरण स्वरूप आपके लिए प्रस्तुत की गई है जिससे आप किसी भी विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका लिखने में सक्षम हो पाएंगे।

3.4.2 विषयवस्तु – भूमिका के पश्चात निबन्ध के विषय की विषय वस्तु प्रस्तुत की जाती है जिसमें विषय से सम्बन्धित सभी सन्दर्भों को प्रस्तुत किया जाता है। किसी विषय पर विषयवस्तु किस प्रकार लिखी जाती है इसका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत विषयवस्तु से जान सकेंगे।

संगीत शिक्षा विषय की विषयवस्तु – पहले संगीत की शिक्षा गुरूमुख से ही प्राप्त की जाती थी। परन्तु बाद में संगीत शिक्षा के नए स्वरूप भी स्थापित हुए। संगीत शिक्षा स्वरूप निम्न प्रकार हैः–

1. गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा।
2. संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा।
3. विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा।

3.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा – संगीत की शिक्षा शिष्य द्वारा गुरू के पास रहकर ही प्राप्त की जाती थी। इस शिक्षा पद्धति में शिष्य को अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की लगन, धैर्य आदि को परखकर शिष्य को स्वीकार किया जाता था। गुरू द्वारा शिष्य को स्वीकार करने के पश्चात शिष्यत्व की औपचारिक घोषणा 'गंडा रस्म' अदायगी के साथ होती थी। इसमें गुरू और शिष्य एक दूसरे को 'धागा' बाँधकर प्रतिबद्धता का संकल्प लेते थे। इस प्रकार की शिक्षा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता था और न ही संगीत शिक्षा की समयावधि निश्चित होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की क्षमता के आधार पर ही शिक्षा दी जाती थी। एक ही गुरू के कई शिष्य होते थे। परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि सबको एक ही शिक्षा दी जाए। दी हुई संगीत शिक्षा का अभ्यास भी गुरू के निर्देशन में ही होता था। संगीत शिक्षा के अतिरिक्त संगीत सुनने का मार्ग निर्देशन का उद्देश्य यह था कि शिष्य अपना विवेक एवं धैर्य न खो बैठे। इस प्रकार की शिक्षा में धैर्य का बहुत महत्व था और लगन से गुरू द्वारा दिए गए अभ्यास के नियमों से कठिन अभ्यास करने की आवश्यकता होती थी। गुरू जब तक शिष्य को कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अनुकूल नहीं समझता था तब तक शिष्यों को कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होती थी। बल्कि शिष्य को कार्यक्रम के योग्य समझने के पश्चात शिष्य को संगीतकारों के मध्य प्रस्तुत किया जाता था जिससे वह सभी संगीतज्ञों का आशीर्वाद प्राप्त करें। इस प्रकार की संगीत शिक्षा में शिष्य, गुरू के सानिध्य में संगीत के गूढ़ रहस्यों को जानता था। संगीत में घराने स्थापित हुए एवं घरानों की शिक्षा इस संगीत शिक्षा पद्धति में ही सम्भव थी। शिष्य अपने गुरू के घराने से सम्बन्धित हो जाता था और उस घराने का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में अपना गौरव समझता था।

3.4.2.2 संगीत संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा – आधुनिक समय में संगीत संस्थानों का महत्व बढ़ गया है। पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे एवं विष्णुदिग्बर पलुस्कर ने संगीत शिक्षा का प्रचार इस प्रकार किया जिससे संगीत क्रियात्मक रूप में विकसित होने लगा। गुरूमुख शिक्षा पद्धति में बहुत कम लोग ही शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। अतः दो संगीत मनीषियों ने संगीत के अधिक प्रचार एवं प्रसार हेतु संगीत संस्थानों की कल्पना कर पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा लखनऊ में 'मैरिस कालेज आफ म्यूजिक' एवं विष्णुदिगम्बर पलुस्कर द्वारा पूना में 'गन्धर्व मंडल' की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत देश के कई शहरों में 'गन्धर्व संगीत महाविद्यालय' के नाम से संगीत शिक्षण संस्थान खोले गए। यह संगीत शिक्षण की औपचारिक व्यवस्था का आरम्भ था। इन संस्थानों में प्रत्येक वर्ष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित किए गए तथा वर्ष के अन्त में परीक्षा की भी व्यवस्था की गई। इन संस्थानों में संगीत के गुणीजन, गुरू अथवा उस्तादों को संगीत शिक्षा हेतु आमंत्रित किया गया और इनके लिए किसी प्रकार के औपचारिक प्रमाण–पत्रों की बाध्यता नहीं रखी गई ।

संगीत के विद्यार्थियों को परीक्षा में सफल होने पर औपचारिक प्रमाण–पत्र देने की व्यवस्था भी की गई। संगीत की हर विधा और हर अंग के लिए विशेषज्ञ रखे गए। प्रतिदिन संगीत शिक्षा का समय भी निर्धारित किया गया तथा अन्य संस्थानों की भाँति इन संस्थानों में भी उत्सव एवं त्यौहारों पर अवकाश का प्राविधान था। जबकि गुरूमुख शिक्षा पद्धति में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं रहती थी और शिष्य को गुरू के पास रहकर ही सीखना होता था और गुरू द्वारा शिष्य को किसी समय भी शिक्षा के लिए बुला लिया जाता था जिसमें शिष्य को उपस्थित होना आवश्यक होता था। संगीत संस्थानों की शिक्षा में शिष्य गुरू के सानिध्य में निश्चित समय के लिए ही रहता है और प्राप्त की गई शिक्षा का अभ्यास स्वयं घर पर ही करता है। संगीत संस्थानों की शिक्षा पद्धति में गुरू का शिष्य के ऊपर नियंत्रण गुरूमुखी शिक्षा पद्धति की अपेक्षा कम रह पाता है। प्रारम्भ में इन संस्थानों में संगीत की शिक्षा हेतु पाँच से छः वर्षों का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। संस्थानों में पाँच, छः वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी यह माना गया कि इसके पश्चात भी शिष्य को गुरू के सानिध्य की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इन दो संस्थानों की स्थापना के पश्चात प्रयाग(इलाहाबाद) में 'प्रयाग संगीत समिति' एवं पंजाब के चंडीगढ़ क्षेत्र में प्राचीन कला संगीत संस्थान की स्थापना हुई। इन सभी संस्थानों ने देश के भिन्न–भिन्न शहरों में अपने केन्द्र स्थापित किए। यद्यपि इन केन्द्रों पर शिक्षा का प्रचार हुआ एवं विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र मिलने लगे।

गुरूमुखी शिक्षा में गुरू एवं शिष्य दोनों का ही लक्ष्य कलाकार बनना तथा बनाना होता था जिसके लिए शिष्य द्वारा अनुशासित अभ्यास किया जाता था और संगीत ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। संगीत संस्थानो में ऐसे भी विद्यार्थी शिक्षा लेते थे जिनका लक्ष्य केवल संगीत ही नहीं होता था बल्कि संगीत की शिक्षा शौकिया रूप में लेते थे। अतः संगीत संस्थानों में संगीत के विद्यार्थियों को समूह में एकरूपता नहीं रहती थी। गुरू द्वारा भी एक ही कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को लगभग एक जैसी ही शिक्षा दी जाती थी जो कि संस्थानों के शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता एवं सीमा भी थी। अतः संगीत संस्थानों से शिष्य उस प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते थे जिस प्रकार की शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में प्राप्त होती थी। संगीत संस्थानों का उद्देश्य संगीत शिक्षा के माध्यम से संगीत का प्रचार एवं प्रसार था और यह सामान्य रूप से संस्थानों के उदेद्श्य के बारे में कहा जाता था कि संस्थान तानसेन नहीं तो कानसेन तो बना ही देते हैं। अर्थात संगीत कलाकार न भी बन पाएं तो एक संगीत का अच्छा श्रोता तो बन ही जाता है। इन संगीत संस्थानों ने विभिन्न शहरों में अपने परीक्षा केन्द्र खोले जहाँ पर संगीत शिक्षा देने का भी प्रावधान किया गया तथा विद्यार्थी इन केन्द्रों से संगीत सीखकर प्रमाण–पत्र प्राप्त करने लगे। इन प्रमाण–पत्रों को सरकार के शिक्षा निदेशालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई।

विद्यालयों में बिना इन संस्थानों के प्रमाण–पत्र के नियुक्तियाँ नहीं होती हैं। विद्यालय स्तर पर शिक्षक के लिए अन्य विषयों में बी. एड. अनिवार्य अर्हता है परन्तु संगीत विषय में शिक्षक होने के लिए बी.एड. के स्थान पर 'संगीत विशारद' एवं 'संगीत प्रभाकर' होना आवश्यक है जो कि इन संस्थानों द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र है। इस व्यवस्था से इन केन्द्रों पर संगीत के प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ गई। इन संगीत संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कलाकार बनने के इच्छुक विद्यार्थियों को गुरू शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही शिक्षा लेना अनिवार्य रहता है इन संस्थानों द्वारा सामान्य संगीत के जिज्ञासु एवं विद्यार्थियों ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.4.2.3 विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय अन्य विषयों की भाँति संगीत विषय पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय का पाठ्यक्रम तैयार कर समय–सारिणी में वादन (पीरियड) शिक्षण के लिए निश्चित किया गया। इनमें शिक्षण पाठ्यक्रम के अनुसार ही दिया जाता है और अध्यापक द्वारा सब विद्यार्थियों को समान रूप से ही अध्यापन कराया जाता है। स्नातक स्तर तक एक वादन प्रायः 45 मिनट का होता है जो कि संगीत की व्यवहारिकता के अनुकूल नहीं है क्योंकि 45 मिनट के अन्दर ही वाद्यों को स्वर में करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः देखा जा रहा है कि

विश्वविद्यालय स्तर पर भी संगीत की मूल आवश्यकता वाद्यों को स्वर में करना विद्यार्थी पूर्ण से नहीं सीख पाते हैं। स्नातक स्तर तक विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को संगीत विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है। अतः विद्यार्थी संगीत के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं हो पाता है। संगीत की आवश्यकता होती है, जिसमें अधिक से अधिक समय देने से ही संगीत कला को समझा जा सकता है।

विद्यालय, विश्वविद्यालय में संगीत विषय प्रारम्भ होने से संगीतज्ञों को व्यवसाय तो प्राप्त हुआ परन्तु इससे संगीत शिक्षा की गुणात्मकता पर प्रभाव पड़ा। यद्यपि विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत के विद्वान भी नियुक्त हुए परन्तु इन संस्थानों की व्यवस्था में उतने समय के लिए संगीत शिक्षक भी सीमा में बँध गए। संगीत संस्थानों में गुरू परम्परा पद्धति में शिष्य पूर्ण रूप से संगीत के वातावरण में रहता था और संगीत संस्थानों में भी जितने समय के लिए वह संस्थान में है उतने समय तक वह संगीत के वातावरण में रहता था। परन्तु विद्यालय और विश्वविद्यालय में विद्यार्थी केवल संगीत के वादन (पीरियड) में ही संगीत के वातावरण से जुड़ा रहता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों से उपाधि सामान्य रूप में मिलती है जिसमें संगीत एक विषय के रूप में रहता है जबकि संगीत संस्थानों में मिलने वाली उपाधि एवं प्रमाण पत्र केवल संगीत का ही मिलता है और गुरू–शिष्य परम्परा में तो कोई औपचारिक प्रमाण–पत्र नहीं होता है। इसमें शिष्य स्वयं अपनी शिक्षा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय शिक्षा, स्नातकोत्तर उपाधि के लिए दी जाने लगी है, जिसमें केवल संगीत विषय का ही अध्ययन विद्यार्थी को करना होता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर केवल स्नातकोत्तर कक्षाओं में ही विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है जो मात्र दो वर्ष के पाठ्यक्रम में निबद्ध होता है। संगीत की शिक्षा गुणात्मकता के साथ स्नातकोत्तर स्तर पर ही हो पाती है जिसका स्वरूप संगीत संस्थानों की शिक्षा जैसा रहता है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में विद्यार्थियों को संगीत के अध्ययन और अभ्यास का समय प्राप्त होता है। विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक की कक्षाओं में संगीत विषय का विद्यार्थी सीमित समय जो कि उसके लिए समय सारिणी में निश्चित किया गया उसमें ही संगीत शिक्षक के सम्पर्क में रहता है। इसी उपलब्ध समय में शिक्षक का उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करने का भी होता है। अतः गुरू शिष्य परम्परा पद्धति एवं संगीत संस्थान द्वारा शिक्षा पद्धति की तुलना में विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली संगीत शिक्षा की गुणवत्ता में कमी रहती है। स्नातकोत्तर में भी यही स्थिति रहती है परन्तु इसमें विद्यार्थी तथा शिक्षक के पास संगीत विषय के लिए अधिक समय रहता है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थी विश्वविद्यालय शिक्षा के अतिरिक्त संगीत संस्थानों एवं गुरू की सहायता भी प्राप्त करते हैं। संगीत में शिक्षक बनने हेतु विश्वविद्यालय प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है अतः विद्यार्थी संगीत हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है। केवल विश्वविद्यालय की संगीत शिक्षा से विद्यार्थी का कलाकार बनना कठिन है और न ही विश्वविद्यालय का यह उद्देश्य ही है। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को संगीत पढ़ाने का उद्देश्य है कि विषय से सम्बन्धित आयामों से विद्यार्थी को परिचित कराया जा सके जिससे वह भविष्य के लिए अपने विकल्प चुन सके।

विश्वविद्यालय की उपाधि प्रमाण–पत्र का महत्व संगीत की शिक्षक अर्हता के रूप में ही है। व्यवसायिक कलाकार बनने में इसका कोई महत्व नहीं है। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं व्यवहारिक नहीं हैं जिससे इनमें सदैव योग्य संगीत शिक्षक नियुक्त नहीं हो पाते हैं। संगीत विषय मुख्य रूप से क्रियात्मक विषय है परन्तु नैट की परीक्षा जो कि विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षक के लिए पास करना अनिवार्य अर्हता है। परन्तु इस परीक्षा में संगीत विषय हेतु विद्यार्थी के क्रियात्मक ज्ञान को नहीं परखा जाता है जबकि संगीत विषय के शिक्षक के लिए क्रियात्मक ज्ञान होना आवश्यक है।

अभी तक आपने संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका एवं विषय वस्तु का अध्ययन किया जो कि निबन्ध लेखन के लिए उदाहरण स्वरूप आपको बताया गया। किसी विषय के निबन्ध पर उपसंहार लिखने के विषय में संगीत शिक्षा विषय निबन्ध पर नीचे लिखे गए उपसंहार से समझेंगे।

3.4.3 उपसंहार संगीत शिक्षा विषय पर – संगीत शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा, संगीत संस्थानो के माध्यम से विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में एक विषय के रूप में दी जाती है। गुरू शिष्य परम्परा में गुरू और शिष्य के मध्य अटूट सम्बन्ध बन जाता है और शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर संगीत के गूढ़ रहस्यों को सीखता है। इसमें गुरू एवं शिष्य दोनों का उद्देश्य कलाकार बनाना तथा बनना होता है। संगीत संस्थानों में भी केवल संगीत शिक्षा दी जाती है जिसमें विद्यार्थी सीमित समय के लिए ही गुरू के सम्पर्क में रहता है और विश्वविद्यालय शिक्षा में स्नातक स्तर पर तो बहुत ही कम समय के लिए विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है। परन्तु संगीत शिक्षक बनने हेतु संस्थानों एवं विश्वविद्यालय में प्रमाण–पत्रों की आवश्यकता होती है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वह संस्थानों की शिक्षा अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में भी किसी गुरू से शिक्षा प्राप्त करे जिससे उसके पास संगीत शिक्षक का व्यवसाय अथवा व्यवसायिक कलाकार बनने का विकल्प रहेगा। उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष न निकाला जाए कि विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा से ही अच्छा संगीत शिक्षा बन सकता है जबकि संगीत की सही शिक्षा प्राप्त ही अच्छा शिक्षक बनेगा। वर्तमान व्यवस्था में संगीत शिक्षक हेतु सभी माध्यमों का अपना महत्व है अतः विद्यार्थी को अपने निश्चित उद्देश्य के लिए इनका चयन करने की आवश्यकता है।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध के माध्यम से आपने निबन्ध लेखन के विषय में अध्ययन किया। कुछ अन्य संगीत सम्बन्धित विषयों की सूची दी जा रही है।

अभ्यास हेतु निबन्ध के विषय

1. **फिल्मो में संगीत**
2. **संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान**
3. **लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत**
4. **भक्ति एवं संगीत**
5. **संगीत एवं अध्यात्म**
6. **संगीत एवं संचार माध्यम (रेडियो व टी0वी0)**
7. **संगीत में अवनद्य वाद्यों की भूमिका**
8. **संगीत गोष्ठी**

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि प्रत्येक विषय के निबन्ध का आरम्भ भूमिका से किया जाता है और निबन्ध का समापन उपसंहार से किया जाता है। उपरोक्त विषयों की विषयवस्तु नीचे दी जा रही है जिसके आधार पर आप इन विषयों पर निबन्ध लिख सकेंगे।

1. **फिल्मों में संगीत**
   - विषयवस्तु
   - फिल्म में संगीत का प्रयोग
   - पार्श्व गायन
   - फिल्म में वाद्यों का प्रयोग
   - गायन के साथ वाद्यों का प्रयोग
   - पार्श्व संगीत में वाद्यों का प्रयोग
   - फिल्मों में संगीत का स्थान एवं उपयोगिता

2. **संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान**
   - विषयवस्तु
   - संगीत में प्रयोग होने वाले इलक्ट्रोनिक उपकरण

   (अ) – इलक्ट्रोनिक तानपुरा
   (ब) – इलक्ट्रोनिक तबला
   (स) – इलक्ट्रोनिक लहरा मशीन

- संगीत के संरक्षण एवं शिक्षा में सहायक इलक्ट्रोनिक उपकरण
  1. ग्रामोफोन 2. टेपरिकार्डर

3. **लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत**
   - विषयवस्तु
   - लोक संगीत की पृष्ठभूमि
   - शास्त्रीय संगीत का परिचय
   - लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध

4. **भक्ति एवं संगीत**
   - विषयवस्तु
   - भक्ति की व्याख्या
   - विभिन्न धर्मों में भक्ति हेतु संगीत का प्रयोग
     1. हिन्दू 2. मुस्लिम 3. सिख 4. इसाई

5. **संगीत एवं आध्यात्म**
   - विषयवस्तु
   - संगीत की उत्पत्ति
   - वैदिक कालीन संगीत
   - आध्यात्म में संगीत का महत्व

6. **संगीत एवं संचार माध्यम**
   - विषयवस्तु
   - रेडियो में संगीत
   - टेलीविजन में संगीत
   - रेडियो तथा टेलीविजन का संगीत के प्रचार–प्रसार में भूमिका

7. **संगीत में अवनद्य वाद्य की भूमिका**
   - विषयवस्तु
   - संगीत का परिचय
   - संगीत के तत्व
   - संगीत के अवनद्य वाद्य
   - संगीत में अवनद्य वाद्यों का प्रयोग

8. **संगीत गोष्ठी**
   - विषयवस्तु
   - संगीत गोष्ठी का परिचय
   - संगीत गोष्ठी में कलाकार की भूमिका
   - विभिन्न प्रकार की संगीत गोष्ठी
   - संगीत गोष्ठी के श्रोता

उपरोक्त कुछ विषय आपके निबन्ध लेखन के अभ्यास के लिए दिए गए हैं। इन सभी विषयों पर आप निबन्ध लिखने का अभ्यास ऊपर अध्ययन कराई विधि के अनुसार करेंगे। सभी विषयों पर निबन्ध के अवयव का क्रम भूमिका, विषयवस्तु एवं उपसंहार रहेगा। उपसंहार एवं भूमिका के प्रभावशाली होने से आपका निबन्ध उच्चस्तर का होता है यद्यपि विषय वस्तु भी महत्वपूर्ण है। उपसंहार में विषय वस्तु में की गई चर्चाओं अथवा विवरणों से प्रकट तथ्यों को परिणाम स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है। आप को इन सबका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप निबन्ध के माध्यम से दिया गया है। अतः उसी आधार पर आप उपरोक्त विषयों पर निबन्ध लेखन का अभ्यास करें।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निबन्ध लेखन की शैली से परिचित हो चुके होंगे। संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन की शैली एवं विद्या से आपको इस इकाई के माध्यम से परिचित कराया गया। निबन्ध लेखन से आप अपने विचारों को लेखन के माध्यम से प्रकट करने की तकनीक विकसित करते हैं जो बाद में आपको शोधपत्र, लेख एवं शोध कार्य में सहायक सिद्ध होगी। उदाहरण स्वरूप दिए गए संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन के विषय जान गए हैं एवं संगीत विषय पर लिखने में सक्षम होंगे। संगीत के गहन अध्ययन एवं संगीत के सन्दर्भों के अध्ययन से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो गए होंगे।

3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *निबन्ध संगीत*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इकाई में दिए गए अभ्यास हेतु निबन्ध विषयों में से किसी एक विषय पर निबन्ध लेखन कीजिए।

इकाई 1 – दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का परिचय एवं उत्तर भारतीय ताल पद्धति से तुलना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 दक्षिण ताल पद्धति की ऐतिहासिकता एवं परिचय
1.4 दक्षिण ताल पद्धति का विकास
1.4.1 प्राचीन अष्टोत्तरशत ताल पद्धति
1.4.2 मध्यकालीन ताल पद्धति
1.4.3 आधुनिक ताल पद्धति
1.5 कर्नाटक ताल पद्धति के सिद्धान्त
1.6 दक्षिण संगीत की सप्तसूलादि तालों की विशेषताएं
1.7 दक्षिण संगीत की 35 तालें
1.8 जाति गति भेद
1.9 दक्षिण ताल पद्धति की कुछ अन्य प्रचलित तालें
1.9.1 चापु ताल और उसके भेद
1.9.2 देशादि एवं मध्यादि तालें
1.9.3 समपदी, अर्द्धसमपदी तथा विषमपदी तालें
1.9.4 नवसन्धि तालें
1.10 उत्तर भारतीय ताल पद्धति
1.11 दक्षिण और उत्तर भारतीय ताल पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन
1.12 उत्तर भारतीय तालों को दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में लिखना
1.13 सारांश
1.14 शब्दावली
1.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.16 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
1.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0टी0–201) के तृतीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप ताल के दस प्राणों का अध्ययन कर चुके हैं। आप संगीतज्ञों के जीवन व संगीत यात्रा से भी परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हमारे संगीत मनीषियों ने भारतीय संगीत को सुरक्षित, सुव्यवस्थित रखने के लिये ताल पद्धति का निर्माण किया। आज दक्षिण तथा उत्तर भारत में दो पद्धतियां प्रचलित हैं, जिसके निर्माण में विद्वानों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप दक्षिण भारतीय ताल पद्धति तथा उत्तर भारतीय ताल पद्धति को समझ सकेंगे। आप दक्षिण भारतीय तथा उत्तर भारतीय ताल पद्धति की समानताओं व असमानताओं को भी समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बात सकेंगे कि संगीत की दोनों पद्धतियां किस प्रकार और क्यों विकसित हुई और प्रचार में आई?
- समझा सकेंगे की संगीत आनन्द प्राप्ति, यश प्राप्ति, व्यावहारिक ज्ञान एवं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उपयोगी है। इसीलिए संगीत का सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक रूप में अध्ययन किया जाता है।
- इसी आधारशिला पर संगीत की दक्षिण तथा उत्तर भारतीय ताल पद्धति की तुलनात्मक विवेचना कर सकेंगे।

1.3 दक्षिण ताल पद्धति की ऐतिहासिकता एवं परिचय

भारतीय संगीत विश्व की सर्वोत्तम धरोहर है जिसके आधार पर अन्य संगीत की विधाओं को संबल मिला और इसी से अन्य संगीत धाराएं विकसित हुई। भारतीय संगीत स्वतः अपने आप में एक विकसित कला है, जिसका प्रमाण अन्य सभी ग्रन्थों में देखने को मिलता है। हमारे संगीत के विद्वानों ने संगीत को सुरक्षित रखने के लिए स्वरलिपि पद्धति व काललिपि पद्धति का निर्माण किया। किसी भी प्रकार के संगीत को काल में बांधने के लिए लय और ताल की आवश्यकता होती है। लय और ताल में बांधकर ही संगीत पूर्णतः को प्राप्त करता है। संगीत को सजीव बनाने में ताल का विशेष योगदान रहता है। अतः ताल संगीत का आधारभूत अंग है। संगीत के इस क्रियात्मक रूप को स्थाई बनाने के लिए लिपि या स्वरांकन प्रणाली का जन्म हुआ। अर्थात् संगीत के क्रियात्मक रूप की शास्त्रानुसार लिपिबद्ध पद्धति ही स्वरलिपि या काललिपि पद्धति है।

संगीत की मूलधारा एक है जो कालांतर में ऐतिहासिक व सांस्कृतिक उत्थान–पतनों के कारण उत्तर व दक्षिण दो भिन्न धााराओं में प्रवाहित हुई। ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि 11वीं सदी से भारत में मुस्लिमों तथा बाद में अंग्रेज विदेशियों का प्रवेश, आक्रमण तथा आधिपत्य 20वीं सदी के पूर्वाद्ध तक कायम रहा, जिसका प्रभाव हमारे संगीत पर भी पड़ा। इससे पूर्व प्राचीन काल में भारत में एक ही प्रकार ही संगीत पद्धति थी। सर्वप्रथम 1309 से 1312 ई0 के मध्य हरिपाल देव द्वारा लिखित ग्रन्थ संगीत–सुधाकर में हम दक्षिण संगीत व उत्तर भारतीय संगीत के विभाजन को पाते हैं।

दक्षिण भारतीय ताल पद्धति को कर्नाटक ताल पद्धति भी कहते हैं। 'कर्नाटक' शब्द संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे पहले आचार्य मतंग के वृहद्देशी नामक ग्रंथ में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के 375 संख्या के श्लोक में देशी रागों के अन्तर्गत एक राग 'कर्नाट' है। इसके उपरान्त शारंगदेव ने भी 'संगीत रत्नाकर' मे कर्नाटक संगीत व नृत्य के विषय में वर्णन किया है। कर्नाटक ताल पद्धति से तात्पर्य विगत दो–तीन शताब्दियों से दक्षिण में प्रचलित ताल प्रणाली से है। इसके अन्तर्गत ताल कला एवं ताल शास्त्र दोनों का समावेश है।

नान्यदेव ने भी 'भरत–भारती' ग्रन्थ में 'कर्नाटक' शब्द का प्रयोग किया है। तमिल भाषा में कर्नाटक शब्द का अर्थ उस भूमि से है जो तीनों ओर से समुद्र से घिरी हो। आज भी जो व्यक्ति वहां प्राचीन रीति–रिवाज और सनातन ढ़ंग से जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें कर्नाटक मनुष्य कहा जाता है। वर्तमान में जो भी संगीत भारत में प्रचलित है उसे देशी संगीत कहते हैं। ये दो प्रकार का है–उत्तर भारतीय संगीत और दक्षिण भारतीय संगीत।

दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति का प्रचार मद्रास, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, त्रिवेन्द्रम, इन चारों प्रान्तों में हुआ। संत त्यागराज, श्याम शास्त्री, मुत्तूस्वामी दीक्षितर, त्रिरूमल, पुरंदर दास आदि के संगीत में हम दक्षिण की एक ही धारा का स्वरूप पाते हैं। दक्षिण में पुरंदर दास द्वारा 16वीं सदी में दक्षिणात्य सात तालों के निर्माण की चर्चा की गई है, जिसका निर्वाह आज तक हो रहा है।

अभ्यास प्रश्न

क) अति लघु प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. दक्षिण संगीत का पितामाह किसे कहा जाता है?
2. दक्षिण भारतीय संगीत का प्रचार किन–किन प्रान्तों में हुआ?
3. 'कर्नाटक' शब्द संगीत सम्बन्धी किस ग्रन्थ में सबसे पहले मिलता है?
4. 'संगीत–सुधाकर' ग्रन्थ किसके द्वारा लिखा गया?

1.4 दक्षिण ताल पद्धति का विकास

वर्तमान दक्षिण भारतीय ताल पद्धति के सम्पूर्ण विकास पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो हम पाएंगे कि यह पद्धति अत्यन्त प्राचीन है। विदेशी विद्वान शोधकर्ता डॉ0 हैरन का मत है कि ईसा से 4 हजार वर्ष पूर्व दक्षिण के संगीत की एक व्यवस्थित परम्परा थी। इसका उल्लेख दक्षिण के एक ग्रन्थ 'सिल्पादिकारम्' में भी रहा है और इसमें गणितीय सिद्धान्तों का सूक्ष्मतम प्रयोग मिलता है। दक्षिण ताल पद्धति का विकास तीन प्रमुख पद्धतियों के आधार पर हुआ हैः–

1.4.1 प्राचीन अष्टोत्तरशत् ताल पद्धति – प्राचीन काल में लगभग पूरे देश में 108 तालों का प्रचलन था, जिसे अष्टोत्तरशततालम् कहा जाता था। इनमें से पहली पांच तालों को मार्गी तालों के अन्तर्गत तथा शेष 103 तालों को देशी ताल के अन्तर्गत रखा गया। संगीत–रत्नाकर में भी 5 मार्गी तालों और 103 देशी तालों का उल्लेख मिलता है।

1.4.2 मध्यकालीन ताल पद्धति – इस पद्धति में विद्वानों ने 108 तालों में से 56 प्रमुख तालों का प्रयोग किया है। इसे अपूर्व तालम् पद्धति भी कहा गया है। इसी के आधार पर मध्यकालीन दक्षिण ताल पद्धति की रचना हुई।

1.4.3 आधुनिक ताल पद्धति – इसे 'सप्तसूलादि' ताल पद्धति के नाम से जानते हैं। प्राचीन एवं मध्यकालीन तालों में से सात प्रमुख तालों को चुनकर इसका विकास किया गया तथा जातिभेद एवं गतिभेद के आधार पर क्रमशः 35 एवं 175 तालों की रचना का क्रम बताया गया है।

सप्तसूलादि तालों के नाम

तालों के नाम	चिन्ह	मात्रा	योग
1. ध्रुव	1011	4+2+4+4	14
2. मठ	101	4+2+4	10
3. रूपक	01 या 10	2+4 या 4+2	06
4. झंप	1 ॅ0	4+1+2	07
5. त्रिपुट	100	4+2+2	08
6. अठ	1100	4+4+2+2	12
7. एक	1	4	04

अभ्यास प्रश्न

क) अति लघु प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. ध्रुव ताल किन चिन्ह द्वारा दर्शाया जाती है?
2. दक्षिण ताल पद्धति का विकास कितनी पद्धतियों के आधार पर हुआ है?
3. चतुरश्र जाति की मठ ताल कितने मात्रा की होती है?
4. संकीर्ण जाति की अठ ताल कितने मात्रा की होती है?

1.5 कर्नाटक ताल पद्धति के सिद्धान्त

कर्नाटक संगीत पद्धति निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है :–

1. काल या प्रमाण – संगीत में लगने वाले समय को काल या प्रमाण कहते हैं। इस पद्धति में समय को नापने के लिए दो इकाईयों का प्रयोग किया गया है। 1) अक्षर काल 2) मात्रा काल

इन दोनों इकाईयों में परस्पर 1:4 का सम्बन्ध है, यदि अक्षर काल एक मात्रा का है तो मात्रा काल चार मात्रा का। अक्षर काल का प्रयोग आधुनिक 35 तालों की पद्धति में किया जाता है और मात्रा का प्रयोग 108 तालों की पद्धति में किया जाता था।

2. अंग – उत्तर भारत की तालों के विभाग के समान दक्षिण भारत की तालों में भी अंग होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि मात्राओं द्वारा निर्मित ताल के विभिन्न खण्ड या भागों को अंग कहते हैं। अंगों की संख्या 6 मानी गई है जिनके नाम अणुद्रुतम्, द्रुतम्, लघु, गुरू, प्लुतम् और काकपद्म हैं। इनमें से प्रथम तीन का प्रयोग 35 तालों की पद्धति में किया जाता है। इन सभी अंगों के नाम व चिन्ह निम्नलिखित हैं–

अंग का नाम	चिन्ह	मात्रा
अणुद्रुतम्	ु	1
द्रुतम्	0	2
लघु	1	4
गुरू	8	8
प्लुतम्	8	12
काकपद्म	+	16

3. जाति – दक्षिण ताल पद्धति में जातियों का विशेष महत्व है। तालों के विभागों की मात्रा संख्या में परिवर्तन से उसका वजन बदल जाता है, उसी से चतुरश्र, त्रयश्र, मिश्र, खण्ड और संकीर्ण नामक पांच जातियां बनती हैं। त्रयश्र जाति के लिए तीन, चतुरश्र जाति के लिए चार, खण्ड जाति के लिए पांच, मिश्र जाति के लिए सात और संकीर्ण जाति के लिए नौ मात्राएं मानी गई हैं। विद्वानों ने त्रयश्र जाति को क्षत्रिय, चतुरश्र जाति को ब्राह्मण, मिश्र जाति को शूद्र, खण्ड जाति को वैश्य और संकीर्ण जाति को वर्णसंकर की संज्ञा दी है। कर्नाटक में आज भी इन पांच जातियों को महत्व दिया जाता है। इसी के प्रयोग से 7 तालों से 35 तालें बनती हैं। इसमें लघु का मान चतुरश्र जाति में चार मात्राओं के बराबर होता है। परन्तु जाति परिवर्तन से त्रयश्र, मिश्र, खण्ड और संकीर्ण जातियों में लघु का मान क्रमशः तीन, पांच, सात और नौ मात्राओं के बराबर होता जाता है।

4. विसर्जितम् – दक्षिण ताल पद्धति में खाली के स्थान में विसर्जितम् का प्रयोग होता है। परन्तु उत्तर के तालों की तरह वहां के किसी विभाग का प्रारम्भ विसर्जितम् से नहीं होता जैसा की उत्तर भारतीय ताल रूपक में देखने को मिलता है। वहां विसर्जितम् किसी विभाग के बीच की मात्राओं को गिनने का साधन मात्र है। ये विसर्जितम् तीन प्रकार का माना जाता हैः–

1. पतांक विसर्जितम् – हाथ को ऊपर उठाकर झटके से खोलकर मात्रा प्रदर्शित करना।
2. कृषय विसर्जितम् – हाथ को बाईं ओर हिलाकर मात्रा को प्रदर्शित करना।
3. सर्पिणी विसर्जितम् – हाथ को दाईं ओर हिलाकर मात्रा को प्रदर्शित करना।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. संगीत में लगने वाले समय को ..... कहते हैं।
2. अंगों की संख्या ..... मानी गई है।
3. जातियों की संख्या ..... है।
4. मिश्र जाति में लघु का मान ..... होता है।
5. दक्षिण ताल पद्धति में खाली के स्थान पर ..... का प्रयोग होता है।
6. विसर्जितम् ..... प्रकार का माना जाता है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. विसर्जितम् से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार का होता है?
2. दक्षिण ताल पद्धति में समय को नापने के लिए कितनी इकाईयों का प्रयोग किया जाता है?
3. अंग से आप क्या समझते हैं? अंगों के नाम लिखिए।
4. जाति क्या है?समझाइए।

1.6 दक्षिणी संगीत की सप्तसूलादि तालों की विशेषताएं

1. सप्ततालों में केवल तीन अंगों लघु, द्रुत और अणुद्रुत का प्रयोग होता है। गुरू, प्लुत एवं काकपद का प्रयोग नहीं होता है।

2. लघु का जब दूसरे अंगों के साथ संयोग नहीं होता तो उसका एकांग ताल के रूप में भी एक ताल के नाम पर प्रयोग होता है।

3. अंगों और उनकी संख्या में भेद होने के कारण एवं लघु के जाति भेद के कारण सप्तताल एक–दूसरे से अलग होते हैं।

4. लघु अंगों का प्रयोग दक्षिण तालों में अनिवार्य रूप से किया जाता है।

5. सप्त तालों में अंगों की अधिकतम संख्या ध्रुवताल में चार है जबकि 108 तालों में सबसे अधिक अंगों की संख्या 'चर्चरी ताल' में 32 है। न्यूनतम अंगों की संख्या और ताल स्वरूप में कोई अंतर नहीं है।

6. सप्त तालों के किसी भी ताल के आदि या अन्त में अणुद्रुत का प्रयोग नहीं हुआ है जबकि प्राचीन कुछ तालों में अणुद्रुत का अंत में प्रयोग हुआ है।

7. सप्ततालों में किसी भी ताल के चिन्हों में तीन से अधिक लघु दो से अधिक द्रुत व एक से अधिक अणुद्रुत का प्रयोग नही हुआ है।

8. सप्ततालों में जब एक से अधिक लघु का प्रयोग होता है, तब सभी लघु एक ही जाति के होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

क) सत्य/असत्य बताइए :–

1. लघु अंगों का प्रयोग दक्षिण तालों में अनिवार्य रूप से किया जाता है। ( )
2. सप्ततालों के किसी भी ताल के आदि या अन्त में अणुद्रुत का प्रयोग नहीं हुआ है जबकि प्राचीन कुछ तालों में अणुद्रुत का अंत में प्रयोग हुआ है। ( )

ख) लघु प्रश्न :–

1. दक्षिण संगीत की तालों की विशेषताएं बताइए।

1.7 दक्षिण संगीत की 35 तालें

दक्षिण भारतीय संगीत की 35 तालों को निम्न तालिका से सरलता से समझा जा सकता है :–

क्र0 सं0	तल	मात्रा	चिन्ह	चतस्त्र जाति	तिस्त्र जाति	खण्ड जाति	मिश्र जाति	संकीर्ण जाति
1	ध्रुवताल	14	1011	4+2+4+4=14	3+2+3+3=11	5+2+5+5=17	4+2+7+7=23	9+2+9+9=29
2	मठताल	10	101	4+2+4=10	3+2+3=8	5+2+5=12	7+2+7=16	9+2+9=20
3	रूपक ताल	6	10	4+2=6	3+2=5	5+2=7	7+2=9	9+2=11
4	झंपताल	7	1 0	4+1+2=7	3+1+2=6	5+1+2=8	7+1+2=10	9+1+2=12
5	त्रिपुट ताल	8	100	4+2+2=8	3+2+2=7	5+2+2=9	7+2+2=11	9+2+2=13
6	अठ ताल	12	1100	4+4+2+2=12	3+3+2+2=10	5+5+2+2=14	7+7+2+2=18	9+92+2=22
7	एकताल	4	1	4	3	5	7	9

नोट – लघु का मात्राकाल जाति के अनुसार परिवर्तित हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. ध्रुव ताल की संकीर्ण जाति में ..... मात्राएं होती हैं।
2. झंप ताल का चिन्ह ..... है।
3. त्रिपुट ताल की मात्रा ..... है।
4. अठ ताल की मिश्र जाति में ..... मात्राएं होती हैं।
5. एक ताल की खण्ड जाति में ..... मात्राएं होती हैं।

1.8 जाति–गति भेद

सप्तसूलादि तालों में जाति–गति भेद के अनुसार 35 तालों से 175 तालों की रचना होती है, जैसे 35x5=175. जिस प्रकार लघु की जाति बदल जाने से जाति भेद की क्रिया हो जाती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण गति बदलने से गतिभेद हो जाता है। ये गतिभेद 5 जातियों के आधार पर होता है जिसे पंचम गति भेद कहते हैं। अतः यही सात तालें गतिभेद के कारण 175 प्रकार की हो जाती है अर्थात् एक ताल 25 प्रकार की हो जाती है। जाति भेद के आधार पर ध्रुवताल के 25 प्रकार इस प्रकार हैं :–

जाति	अंग	मात्रा	गतिभेद	गतिभेद के प्रकार से कुल मात्राएं
चतस्श्र	1011	14	चतुरश्र तिस्त्र खण्ड मिश्र संकीर्ण	14x4=56 14x3=42 14x5=70 14x7=98 14x9=126

तिस्र	1011	11	चतुरश्र तिस्त्र खण्ड मिश्र संकीर्ण	11x4=44 11x3=33 11x5=55 11x7=77 11x9=99
खण्ड	1011	17	चतुरश्र तिस्त्र खण्ड मिश्र संकीर्ण	17x4=68 17x3=51 17x5=85 17x7=119 17x9=153
मिश्र	1011	23	चतुरश्र तिस्त्र खण्ड मिश्र संकीर्ण	23x4=92 23x3=69 23x5=115 23x7=161 23x9=207
संकीर्ण	1011	29	चतुरश्र तिस्त्र खण्ड मिश्र संकीर्ण	29x4=116 29x3=87 29x5=145 29x7=203 29x9=261

इस प्रकार अन्य 6 तालों के 25–25 प्रकार बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार कुल 175 तालों की रचना होती है।

1.9 दक्षिण ताल पद्धति की कुछ अन्य प्रचलित तालें

1.9.1 चापु ताल और उसके भेद – इसका प्रयोग प्राचीन काल से हो रहा है। इसमें लोकगीत एवं लोक धुनों के स्वरूप का प्रयोग होता हैं, देशी तालों के अन्तर्गत आते हैं इनमें दो आघात होते हैं। उत्तरी पद्धति के अनुसार इसे हम एक ताली एवं एक खाली के अन्तर्गत रख सकते हैं। चापु ताल के निम्न चार प्रकार हैं।

(1) विस्त्र चापु – (1+2=3) इसमें तीन मात्राएं होती हैं। पहला खण्ड एक मात्रा का और दूसरा दो मात्रा का होता है।

(2) खण्ड चापु – (2+3=5) इसमें पांच मात्राएं होती हैं। पहला खण्ड दो मात्रा का और दूसरा खण्ड तीन मात्रा का होता है।

(3) मिश्र चापु – (3+4=7) इसमें सात मात्राएं होती हैं। पहला विभाग 3 मात्रा का व दूसरा 4 मात्रा का होता है। लय के विभिन्न भेद दिखाने के कारण कभी–कभी पहला विभाग चार मात्रा का व दूसरा विभाग 3 मात्रा का भी रखा जाता है। जैसे – 3+4=7

(4) संकीर्ण चापु – (4+5=9) इसमें नौ मात्राएं होती हैं। पहला खण्ड 4 मात्रा का और दूसरा 5 मात्रा का होता है। जैसे – 4+5=9

नोट – वर्तमान समय में इसका प्रयोग कम ही होता है। चापु ताल के अन्तर्गत ध्यान देने योग्य ये बात है कि यदि किसी रचना में चापु ताल लिखा है तो इसका अर्थ मिश्र चापु से ही होगा।

1.9.2 देशादि एवं मध्यादि तालें – इसकी आवृत्ति में चार मात्रा के अक्षरकाल होते हैं। यदि 1, 2, 3, 4 मात्राओं में 1 पर ताली तथा तीन पर खाली रखें तो इसे मध्यादि ताल कहेंगे। जैसे –

1, 2, 3, 4
x 0

परन्तु यदि इसमें विपरीत खाली स्थान तीन के अतिरिक्त एक मात्रा पर कर दें, अर्थात् मात्रा के प्रारम्भ में कर दें तो इसे देशादि ताल कहेंगे। जैसे –

1, 2, 3, 4
0 x

1.9.3 समपदी, अर्द्धसमपदी तथा विषमपदी तालें – जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि सम्पदी यानी जिनमें मात्रा के पदों में समान विभाजन हो। जैसे – 2/2/2/2 या 4/4/4/4 इसमें तीनताल, कहरवा, एकताल को रख सकते हैं। अर्द्धसम्पदी में पद, पहला, तीसरा, तथा दूसरा और चौथा इस प्रकार से हो जैसे – 2, 3, 2, 3 या 3, 4, 3, 4 । इसके अन्तर्गत हम झपताल, झूमरा, दीपचन्दी तालों को रख सकते हैं। विषम पदों में पद असमान हों जैसे – 2, 3, 4, 5, 2, 3, 4। इसके अन्तर्गत धमार, तीव्रा, रूपक ताल को रख सकते हैं।

1.9.4 नवसन्धि तालें – इन तालों का प्रयोग दक्षिण के मंदिरों में विभिन्न नवसंधि काल के अन्तर्गत किया जाता है। जिस प्रकार उत्तर भारत के पुष्टिमार्गीय बल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में भगवान के विभिन्न क्रिया कलाप से सम्बन्धित अष्ठ प्रहर कीर्तन हुआ करता है और उसी से सम्बन्धित भगवान की झांकी होती है जैसे–मंगलाआरती, गवाल भोग, श्रृंगार, राजभोग, शयन इत्यादि। ठीक इसी प्रकार दक्षिण में पूजा अर्चना हेतु विभिन्न नौ संन्धि काल के अन्तर्गत कीर्तन के साथ इन तालों का प्रयोग किया जाता है। इसका विवरण निम्न प्रकार है :–

संधि	ताल का नाम	अंग
ब्रह्मा	ब्रह्मा	1813
इन्द्र	इन्द्र	118100
अग्नि	मत्तापन	10101
यम	भृंगी	1811
नैऋति	ऋति	111100
वरूण	नव	10001
वायु	बली	0001
कुबेर	कोट्टारी	1888
ईषान	टक्किरी	818

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. चापु ताल से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकार बताइए।
2. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :–
   (1) संकीर्ण चापु (2) देशादि और मध्यादि तालें
   (3) समपदी, अर्द्धसम्पदी तथा विषमपदी (4) नवसन्धि तालें

ख) अति लघु प्रश्न :–

1. तिस्र चापु में कितनी मात्राएं होती हैं?
2. संकीर्ण चापु में कितनी मात्राएं होती है?
3. दक्षिण में नवसंधि तालों का प्रयोग कहां किया जाता है?

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. मिश्र चापु में ..... मात्राएं होती हैं।
2. खण्ड चापु में दूसरा खण्ड ..... मात्राओं का होता है।
3. संकीर्ण चापु में पहला खण्ड ..... मात्राओं का होता है।
4. देशादि एवं मध्यादि तालों की आवृत्ति में ..... अक्षर काल होता है।

1.10 उत्तर भारतीय ताल पद्धति

कुछ विद्वानों का कहना है कि उत्तरी संगीत पर अरब और फारस के संगीत का प्रभाव पड़ा क्योंकि 13वीं शताब्दी से भारत में मुसलमानों का आना प्रारम्भ हुआ तथा धीरे–धीरे वे उत्तर भारत के शासक हो गए। इस प्रकार उनकी संस्कृति और सभ्यता ने संगीत पर अमिट छाप डाली। उत्तर भारतीय ताल पद्धति का निर्माण निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है :–

मात्रा – ताल में लगने वाले समय की इकाई को मात्रा कहते हैं। मात्राओं को अंकों द्वारा स्पष्ट किया जाता है। जैसे दादरा ताल – मात्रा – 6

1, 2, 3 | 4, 5, 6
x 0

विभाग – ताल की जाति अथवा वजन के आधार पर जो खण्ड किए जाते हैं उन्हें विभाग कहते हैं। विभाग को दर्शाने के लिए खड़ी लकीर के चिन्ह द्वारा विभाग को स्पष्ट किया जाता है। दादरा ताल :–

धा धी ना | धा ती ना
x 0

ताली – हाथ से ताल प्रदर्शन की विधि को सशब्द क्रिया(ताली) कहते हैं। जब ताल प्रदर्शित करते समय विभाग की प्रथम मात्रा पर करतल ध्वनि की जाए उसे ताली कहते हैं।

खाली – ताल के विभाग की वह प्रथम मात्रा जिस पर हाथ को एक और झुका कर या हिलाकर संकेत दिया जाता है, उसे खाली कहते हैं। इसे पात या निःशब्द क्रिया भी कहते हैं।

सम – ताल का वह स्थान जहां से ताल आरम्भ होता है अर्थात् ताल की पहली मात्रा के स्थान को सम का स्थान माना गया है। सामान्यतः सम स्थान पर पहली ताली ही होती है। केवल रूपक ताल ही इसका अपवाद है।

ठेका – किसी ताल की निश्चित मात्रा उसका स्वरूप तथा उसके वजन के आधार पर उस ताल के लिए निश्चित किए गए बोल समूह को ठेका कहते हैं। ठेके को अक्षरों द्वारा ताल की मात्रा संख्या के नीचे लिखकर स्पष्ट किया जाता है।

लयकारी – एक से अधिक बोलों को एक मात्रा में लिखित रूप में प्रदर्शित करने के लिए अर्द्धचन्द्र(˘) का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए :–

1. एक मात्रा काल में 2 वर्ण – धागे
2. एक मात्रा काल में 3 वर्ण – तकिट
3. एक मात्रा काल में 4 वर्ण – धागेतिट या तिरकिट

विश्रान्ति (ठहराव) – इसे ताल की भाषा में ˙दम भी कहते हैं। दो वर्णों के मध्य में ˙यदि विश्रान्ति काल हो तो उसे लिखित रूप में दर्शाने के लिए एक मात्रा काल का '**S**' अथवा (–) चिन्ह द्वारा स्पष्ट किया जाता है। जैसे **धमार ताल :–**

क धि ट धि ट | धा ऽ | ग ति ट | तिट ता ऽ | क
x 2 0 3 x

उपरोक्त धमार ताल में 6 मात्राओं के बाद एक मात्रा का विश्रान्ति काल स्पष्ट किया गया है। *उत्तर भारतीय ताल पद्धति का यही स्वरूप है।*

अभ्यास प्रश्न

क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. निम्न में से उत्तर भारतीय ताल पद्धति में ताल रचना के सिद्धान्त नहीं हैं –
   (1) ठेका (2) विभाग (3) खाली (4) विसर्जितम्
2. ताल में लगने वाले समय को कहते हैं?
   (1) मात्रा (2) विभाग (3) खाली (4) ताली
3. ताल का वह स्थान जहां से ताल आरम्भ होती है कहलाता है –
   (1) सम (2) लयकारी (3) खाली (4) विश्रान्ति
4. ताल की जाति एवं वजन के आधार पर जो खण्ड किए जाते हैं कहलाते हैं –
   (1) विभाग (2) ताली (3) खाली (4) जाति

1.11 दक्षिण और उत्तर भारतीय ताल पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 गोडबोले के शब्दों में–''कर्नाटक ताल पद्धति जिस प्रकार एक सुसंगठित, निश्चित स्वरूप और कुछ मूल तत्वों के आधार पर हमारे समक्ष है, उस दृष्टि से उत्तर भारतीय ताल पद्धति का वह स्वरूप नहीं दिखाई देता है।

1. उत्तर भारत में तालों की संख्या अनिश्चित है और प्रत्येक ताल का ठेका बोल निश्चित हैं, किन्तु दक्षिण भारतीय तालों की संख्या निश्चित है तथा तालों के बोल निश्चित नहीं हैं। वे गायन, वादन के अनुसार ही बना लिए जाते हैं।

2. कर्नाटक संगीत में कोई भी एक ताल विभिन्न प्रकार से बनाई जाती है। इसकी मात्राओं को भी विभिन्न जातियों में परिवर्तित कर एक ही ताल के कई प्रकार बन जाते हैं। उनकी मात्रा में परिवर्तन इसी जाति के बदलने से हो जाता है। यहाँ मुख्य सात तालें प्रचलन में हैं, जिन्हें सप्तसूलादि ताल कहते हैं। जबकि उत्तर भारत में प्रत्येक ताल के साथ उनके ठेके निश्चित हैं, जिनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है।

3. उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में गणित का विशेष महत्व दृष्टिगोचर नहीं होता है। विद्वानों ने तालों की मात्राओं को आवश्यकता अनुसार घटा–बढ़ाकर विभिन्न बोलों द्वारा तालों की रचना कर ली है परन्तु दक्षिण ताल पद्धति में ऐसा नहीं है। वहाँ गणितीय प्रणाली ही प्रचलन में है। दक्षिण पद्धति में गीत को विभिन्न गायन शैलियों के अनुसार समान मात्राओं की अनेक तालें बनाने का क्रम नहीं है। हमारे यहां आड़ाचार ताल, दीपचन्दी, धमार आदि के अतिरिक्त अन्य चौदह मात्राओं की तालें प्राप्त हो सकती हैं।

4. उत्तर भारतीय ताल पद्धति में ताल के विभाग का प्रारम्भ ताली व खाली दोनों से किया जाता है। इस पद्धति में एक से अधिक भी खाली बहुत सी तालों में दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी तालें हैं जिसमें खाली नहीं होती। ताल की मात्राओं को गिनने के लिए यहां कोई साधन नहीं है। दक्षिण भारतीय तालों में विसर्जितम् है जो विभाग की प्रथम मात्रा पर न होकर बीच की मात्राओं में होता है। यहां खाली के लिए कोई अलग विभाग नहीं है। विसर्जितम् का प्रयोग ताल की मात्राओं को गिनने के लिए होता है। जिसके तीन प्रकार हैं पतांग, कृषय एवं सर्पिणी विसर्जितम्।

5. उत्तर भारतीय ताल पद्धति में खाली के विभाग को प्रदर्शित करने के लिए एक ही ढ़ंग प्रचलित है, केवल हाथ को एक ओर झटका देकर खाली को प्रदर्शित करते हैं। शेष भाग की मात्राओं की उंगलियों से गणना की जाती है। खाली विभाग की प्रथम मात्रा पर ही होती है।

6. दक्षिण भारतीय तालों में भी खाली अंग की प्रथम मात्रा पर ही होती है। तीन अंगों की पद्धति पर आधारित होने के कारण यहां नियम निश्चित हैं।

7. दक्षिण ताल पद्धति पूर्णतया जातियों पर आधारित है जिसमें लघु अंग का विशेष महत्व है। लघु अंग का मात्राकाल विभिन्न जातियों के आधार पर बदल जाने से एक ही ताल के विभिन्न प्रकार हो जाते हैं। जैसे जाति भेद से 35 ताल तथा जाति गति भेद से 175 तालों की रचना की गई है। इस पद्धति में ताल की लय जातियों पर ही निर्भर करती है। भारतीय ताल पद्धति में ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। ताल के प्राचीन तत्व जिन्हें हम दस प्राण के नाम से जानते हैं, का प्रयोग इस पद्धति में बखूबी किया जाता है, किन्तु उत्तर भारतीय ताल पद्धति में ऐसा कोई नियम नहीं है।

इस प्रकार दोनों पद्धतियों में भिन्नता पाई जाती है।

1.12 उत्तर भारतीय तालों को दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में लिखना

एकताल – उत्तर भारतीय ताल पद्धति में :–

मात्रा	1, 2	3, 4	5, 6	7, 8	9, 10	11, 12
बोल	धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	कत ता	धागे तिरकिर	धी ना
चिन्ह	x	0	2	0	3	4

एकताल – दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में – **1100**

विशेष – यह दक्षिण ताल पद्धति की अठ ताल से मिलती है।

धमार – उत्तर भारतीय ताल पद्धति में :–

मात्रा	1 2 3 4 5	6 7	8 9 10	11 12 13 14
बोल	क धि ट धि ट	धा ऽ	ग ति ट	ति ट् ता ऽ
चिन्ह	x	2	0	3

धमार – दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में – ˘˘। = 14 मात्रा

अभ्यास प्रश्न

क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आड़ाचार ताल व धमार ताल को दक्षिण ताल पद्धति में लिखिए।
2. एकताल व झपताल को दक्षिण ताल पद्धति में लिखिए।

1.13 सारांश

भारतीय संस्कृति की मूलधारा एक है, जो कालांतर में उत्तर व दक्षिण दो धाराओं में प्रवाहित हुई। ऐतिहासिक व सांस्कृतिक उत्थान–पतनों के बीच दक्षिण संगीत की जिस निष्ठा से रक्षा हुई, उसका उत्तर भारतीय संगीत में हम अभाव पाते हैं। दक्षिण के संगीतज्ञ अपनी कला में प्रयुक्त परम्परागत तत्वों को बनाए रखने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे, जबकि उत्तर भारतीय धारा विभिन्न संगीत शैलियों से मिलकर नित्य नूतन रूप धारण करती रही।

दक्षिण ताल पद्धति का विकास मुख्यतः तीन प्रकार की ताल पद्धतियों के आधार पर हुआ। प्राचीन अष्टोत्तरशत् ताल पद्धति, मध्यकालीन ताल पद्धति तथा आधुनिक ताल पद्धति। इन पद्धतियों में प्राचीन 108 देशी तालों में से 5 मार्गी तालें, मध्यकालीन ताल पद्धति में 56 तालें तथा वर्तमान में इस पद्धति में प्राचीन मध्यकालीन तालों में से 7 तालों को चुनकर इसका विकास किया गया। इन्हीं सात तालों के जाति भेद से 7x5=35 ताल तथा जाति–गति भेद द्वारा 175 तालों की रचना होती है। इन तालों के निर्माण में लघु का विशेष महत्व है। 'लघु' के क्रमशः जातियों के आधार पर परिवर्तित हो जाने से ताल की गति में भी परिवर्तन आ जाता है। इस पद्धति में 6 अंग हैं किन्तु लघु, द्रुत तथा अणुद्रुत तीन का ही प्रचार है। दक्षिण पद्धति की ताली में खाली के स्थान को विसर्जितम् द्वारा दर्शाया जाता है। उसके लिए उत्तर भारतीय ताल पद्धति की तरह खाली का अलग खण्ड नहीं है। दक्षिण ताल पद्धति में ताल के दस प्राणों का पूर्ण रूप से प्रयोग होता है।

दक्षिण ताल पद्धति आज भी अपनी परम्परागत विशेषताओं को बनाए हुए है। यह पद्धति उत्तर भारतीय ताल पद्धति की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है।

1.14 शब्दावली

- मनीषी – विद्वान
- आधिपत्य – पूर्ण अधिकार
- पितामह – जन्मदाता या जनक
- अष्ठोत्तरशततालम् – 108 तालें
- सूक्ष्मतम् – छोटे से छोटा
- वर्ण संकट – कई वर्णों से मिश्रित
- पतांक – ध्वज की भांति

1.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3 उत्तरमाला :–

क) अति लघु प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1	पुरंदरदास	2.	मद्रास, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, त्रिवेन्द्रम
3.	बृहद्देशी	4.	हरिपाल देव

<u>2.4 उत्तरमाला</u> :–

क) अति लघु प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1.	1011	2.	तीन
3.	दस (10)	4.	22

<u>2.5 उत्तरमाला</u> :–

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1.	काल या प्रमाण	2.	6	3.	5
4.	7	5.	विसर्जितम्	6.	तीन

<u>2.6 उत्तरमाला</u> :–

क) सत्य/असत्य बताइए –

1.	सत्य	2.	सत्य

<u>2.7 उत्तरमाला</u> :–

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1.	29	2.	1 0	3.	8
4.	18	5.	5		

<u>2.9 उत्तरमाला</u> :–

ख) अति लघु प्रश्न :–

1.	3	2.	9	3.	मंदिरों में

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1.	7	2.	3 मात्रा का
3.	4 मात्रा का	4.	4 मात्रा

<u>2.10 उत्तरमाला</u> :–

क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1.	विसर्जितम्	2.	मात्रा
3.	सम	4.	विभाग

<u>2.12 उत्तरमाला</u> :–

क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1.	0 ||| व ॑ ॑		2.	||00

1.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, श्री बाबू लाल शुक्ल, *नाट्यशास्त्र,* संस्कृत हिन्दी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी।
2. भरत(अभिनव भारती सहित), *नाट्यशास्त्रम्,* ओरियन्टल इन्सटीट्यूट, बड़ौदा।
3. बृहस्पति, आचार्य, *संगीत–चिंतामणि–भाग 1,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. सेन, डॉ0 अरूणकुमार,*उत्तर भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,* मध्यप्रदेश ग्रंथ आकादमी, भोपाल।
5. गोडवोले, श्री मधुकर गणेश, *तबला–शास्त्र,* अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद।
6. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय भाग–3,* अजय प्रकाशन, बहादुर गंज, इलाहाबाद।
7. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *प्रभाकर प्रश्नोत्तरी,* रूबी प्रकाशन, करेली, इलाहाबाद।
8. चौधरी, डॉ0 सुमद्रा, *भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान,* कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर (राजस्थान)।
9. मराठे, श्री मनोहर भालचन्द्र, *ताल वाद्य शास्त्र,* शर्मा पुस्तक सदन, पाटनकर बाजार लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0।
10. पटेल, श्री जमुना प्रसाद, *ताल वाद्य परिचय,* प्रिया कम्प्यूटर्स, खैरागढ़, छत्तीसगढ़, म0प्र0।
11. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण, *संगीत–विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
12. तलेगांवकर, श्री केशव रघुनाथ, *सुलभ तबला वादन भाग–2,* सुलभ संगीत प्रकाशन, आगरा।

1.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, डॉ0 मृत्युजय, संगीत मैन्यूअल, एच0डी0 पब्लीकेशन, आर0ई0जी0डी0, नई दिल्ली।
2. शर्मा, डॉ0 स्वतन्त्र बाला, *संगीत तबला अंक*, 1993।

1.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दक्षिण ताल पद्धति को समझाते हुए सप्तसूलादि तालों से 35 तालों के रचना क्रम को बताइए।
2. जाति–गति भेद से आप क्या समझते हैं? इसके द्वारा 175 तालों के रचना क्रम को बताइए।
3. दक्षिण तथा उत्तर भारतीय ताल पद्धतियों की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।
4. उत्तर भारतीय ताल पद्धति की विस्तृत विवेचना कीजिए।

इकाई 2 – पाठ्यक्रम की तालों का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों के ठेके, लयकारी(दुगुन, तिगुन एवं चौगुन) सहित लिपिबद्ध करना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाठ्यक्रम की तालें
- 2.3.1 आडाचारताल का परिचय
- 2.3.2 झपताल का परिचय
- 2.3.3 एकताल का परिचय
- 2.3.4 सूलताल का परिचय
- 2.3.5 धमार ताल का परिचय

2.4 तालों को लयकारीयों में लिखना
- 2.4.1 आडाचारताल की लयकारीयां
- 2.4.2 झपताल की लयकारीयां
- 2.4.3 एकताल की लयकारीयां
- 2.4.4 सूलताल की लयकारीयां
- 2.4.5 धमार ताल की लयकारीयां

2.5 सारांश
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0टी0–201) के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप दक्षिण भारतीय ताल पद्धति एवं उत्तर भारतीय ताल पद्धति को समझ चुके होंगे। आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को जान चुके होंगे। आप निबन्ध लेखन के विषय में भी जान चुके होंगे।

इस इकाई में आप संगीत में प्रयुक्त होने वाली पाठ्यक्रम की तालों का पूर्व परिचय प्राप्त करेंगे। इस इकाई में तालों के विभिन्न ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारियों में लिखना भी समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप ताल की संरचना एवं स्वरूप को समझ सकेंगे जिससे आप इनका उपयोग संगीत में भली–भांति कर पाएंगे। आप तालों को विभिन्न लयकारियों में लिखना भी सीख सकेंगे।

2.2 उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- तालों की संरचना एवं स्वरूप को समझ पाएंगे।
- तालों के भिन्न–भिन्न उपयोग भी समझ सकेंगे।
- तालों के विभिन्न ठेकों को जान पाएंगे।
- तालों को विभिन्न लयकारीयों में लिखना सीख सकेंगे।

2.3 पाठ्यक्रम की तालें

2.3.1 आडाचारताल का परिचय – आडाचारताल चौदह मात्रा की तबले पर बजने वाली ताल है जिसका प्रयोग विलम्बित एवं मध्य लय में किया जाता है। एकताल की भांति अति विलम्बित लय में इसका प्रयोग नहीं होता है। इसमें गायन एवं वाद्यों पर मुख्य रूप से मध्यलय की रचना ही गाई व बजाई जाती है। चारताल पखावज पर बजाने वाली बारह मात्रा की ताल है परन्तु आडाचारताल का पखावज पर बजने वाली ताल से कोई सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि नाम से सम्बन्ध का भ्रम होता है। इसमें एकल वादन भी तबला वादकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसका स्वरूप मध्य लय में ही स्थापित होता है। द्रुत एवं अति द्रुत लय में प्रायः इस ताल का प्रयोग नहीं किया जाता है। चौदह मात्रा की ही तबले पर बजने वाली झूमरा ताल, दीपचन्दी ताल एवं कैद फरोदस्त ताल हैं जिनका स्वरूप एवं ताल संरचना आडाचारताल एवं एक दूसरे से भिन्न हैं एवं इन तालों का संगीत में प्रयोग भी भिन्न रूप में होता है। यही समान मात्रा की तबले पर बजने वाली भिन्न तालों का औचित्य भी है। झूमरा ताल का प्रयोग विलम्बित लय की रचना के लिए ही किया जाता है एवं इसका प्रयोग मध्य एवं द्रुत लय हेतु नहीं किया जाता है। दीपचन्दी ताल मध्यलय में भी प्रयोग की जाती है जो बृज की होली एवं चैती गायन के साथ बजाई जाती है। दीपचन्दी ताल को चाँचर भी कहा जाता है। कैद फरोदस्त ताल मध्य लय में गायन एवं वादन की रचनाओं हेतु प्रयोग की जाती है।

आडाचारताल की संरचना निम्न प्रकार है :–

मात्रा – 14, विभाग – 7 (2+2+2+2+2+2+2) प्रत्येक विभाग दो मात्रा का है,
ताली – 1, 4, 7 एवं 11 पर, खाली – 5, 8 एवं 13वीं मात्रा पर

ठेका

धिं	तिरकिट	धिं	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धि	ना	धि	धि	ना	धिं
×		2		0		3		0		4		0		×

2.3.2 झपताल का परिचय – यह चार विभाग में विभक्त 10 मात्रा की विषम पदीय ताल है जिसका प्रथम एवं तृतीय विभाग दो–दो मात्रा एवं दूसरा एवं चौथा विभाग तीन–तीन मात्रा का है। पहली, तीसरी एवं आठवीं मात्रा पर ताली एवं छठी मात्रा पर खाली है। प्रथम विभाग में चतुस्त्र का खण्ड दो मात्रा एवं द्वितीय विभाग तिस्त्र जाति का है जो मिलकर खण्ड जाति है। विभागों में समान मात्राएं न होने के कारण यह विषम ताल है। इसका प्रयोग मध्य लय की रचनाओं के साथ किया जाता हैं। एकल वादन में भी झपताल का खूब प्रयोग किया जाता है।

मात्रा – 10, विभाग – 4(2,3,2,3), ताली – 1, 3 व 8 पर, खाली – 6 पर

ठेका

धि	ना	धि	धि	ना	ति	ना	धि	धि	ना	धि
×		2			0		3			×

2.3.3 एकताल का परिचय – एकताल बारह मात्रा की प्रचलित ताल है। यह ताल तबले पर बजाई जाती है। बारह मात्रा की अन्य ताल चारताल है परन्तु यह परवावज पर बजाई जाने वाली है एवं इसकी ताल संरचना एकताल की भांति है। इस ताल का प्रयोग विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय में किया जाता है। यह ताल मुख्य रूप से गायन की ताल है एवं इसमें गायन की विलम्बित लय की रचना जिसे बड़ा ख्याल कहा जाता है में सबसे अधिक गाया जाता है। ताल के ठेके के बोल में तिरकिट के बोल होने के कारण इसका प्रयोग ख्याल गायन में अति विलम्बित लय में आसानी से किया जा सकता है। चूंकि तिरकिट के माध्यम से एक मात्रा को चार मात्रा में विभक्त किए जाने में कठिनाई नहीं होती है। तिरकिट बोल को दो मात्रा में विभक्त करने पर सामान्य संगीत की भाषा में चौबीस मात्रा की एकताल एवं चार मात्रा में विभक्त करने पर अडतालिस मात्रा की एकताल कहा जाता है।

छो–दो मात्राओं के छः विभाग इस ताल की संरचना बनाते हैं। पांचवीं, नौवीं, ग्यारवीं मात्रा पर ताली एवं ताल की तीसरी मात्रा एवं ताल के मध्य स्थान सातवीं मात्रा पर खाली होती है। एकताल का स्वरूप निम्न प्रकार से है :–

मात्रा – 12, विभाग – 6 (2+2+2+2+2+2), ताली – 1, 5, 9 व 11, खाली – 3 व 7 पर

ठेका

धिं धिं । धागे तिरकिट । तू ना । क ता। धागे तिरकिट । धिं ना । धिं

× 0 2 0 3 4 ×

इस ताल में वजन कम और अधिक होता रहता है अर्थात सम पर वजन सबसे अधिक, फिर तीसरी मात्रा पर वजन कम होता है, फिर पांचवीं मात्रा पर वजन बढ़ता है, सातवीं मात्रा पर ताल का सबसें कम वजन रहता है, फिर से वजन बढ़ना आरम्भ होता है तथा सम से पूर्व ग्यारवी मात्रा पर वजन बढ़ता है। द्रुत लय में ताल के ठेके के बोल में परिवर्तन कर बजाने में सुविधा रहती है एवं ताल स्वरूप भी स्थापित रहता है जो निम्न प्रकार है :–

धिं	ऽ	धां	ति	तू	ना	क	ऽ	धा	तीं	धिं	ना
×		0		2		0		3		4	

एकताल के बोल तिरकिट के स्थान पर लय के अनुसार तिर अथवा ति बोल का प्रयोग किया जाता है एवं धागे के स्थान पर धा बोल बजाया जाता है। इस प्रकार द्रुत लय एकताल का ठेका बजाने से ताल के स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता है।

2.3.4 सूलताल का परिचय – इसे सूलफाक अथवा सूलफाक्ता के नाम से भी जाना जाता है। पं0 विजयशंकर मिश्र ने अपनी पुस्तक तबला पुराण में लिखा है–" मोहम्मद करम इमाम ने सूलताल को अमीर खुसरो द्वारा रचित 17 तालों में से एक माना है, आचार्य बृहस्पति ने अदन–उल–मूसीकी नामक पुस्तक के आधार पर इस ताल का नाम उसूले–फाख्ता दिया है, जो बाद में बिगड़कर सूलफाख्ता हो गया। उसूल का अर्थ सिद्धान्त होता है और फाख्ता पंडुक(गुलगुचया) नामक चिड़िया को कहते हैं। लोगों का मत है कि इस चिड़िया की बोली के आधार पर इस ताल की रचना हुई है। फाख्ता की बोली कुछ इस प्रकार होती है – कू ऽ ऽ ऽ कू ऽ कू ऽ ऽ ऽ "

यह पखावज पर बजाई जाने वाली प्रमुख तालों में से एक है। मुख्यतः इसका वादन मध्य व द्रुत लय में होता है। गायन में ध्रुपद शैली की मध्यलय की रचनाओं व वादन में वीणा के साथ संगति में इसका प्रयोग होता है। पखावज में इस ताल में एकल वादन भी प्रस्तुत किया जाता है।

यह चतस्र जाति की समपदीय ताल है। इसकी मात्राओं की संख्या 10 है, जो पाँच विभागों में बँटी है। इसके प्रत्येक विभाग में दो–दो मात्राएं हैं। एक, पांच एवं सातवीं मात्रा पर ताली एवं तीसरी तथा नौवीं मात्रा पर खाली है।

मात्रा – 10, विभाग – 5, ताली – 1, 5 व 7 पर, खाली – 3 व 9 पर

ठेका

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कता	गदि	गन	धा
×		0		2		3		0		×

2.3.5 धमार ताल का परिचय – पखावज वाद्य पर बजने वाली चौदह मात्रा की यह प्रचलित ताल है। धमार ताल में ध्रुपद गायन शैली की श्रृंगारिक रचनाएं गाई जाती हैं, जबकि चारताल में गाए जाने वाली रचनाएं आध्यात्मिक एवं भक्ति परक होती हैं। धमारताल में गाई जाने वाली रचना का मुख्य विषय होली वर्णन है जिसमें राधा कृष्ण की होली की झांकी प्रस्तुत की जाती है। होली का पर्यायवाची धमार है। धमार गायन यद्यपि ध्रुपद शैली के अन्तर्गत ही आता है परन्तु धमार ताल में गाई रचना को ही धमार कहते हैं।

इसका प्रयोग विलम्बित लय में ही किया जाता है। गायन की रचनाओं के अतिरिक्त रूद्रवीणा एवं सुरबहार आदि पर भी धमार ताल की रचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं। प्रसिद्ध सितार वादक पं0 निखिल बनर्जी ने धमार ताल में भी रचना प्रस्तुत की जिसमें तबला की संगत की गई, परन्तु यह पारम्परिक मान्यता के आधार पर नहीं है। चारताल की भांति ही धमार ताल में भी विस्तृत एकल वादन प्रस्तुत किया जाता है। ताल की पहली मात्रा अथवा सम हेतु धा अथवा धिं वर्ण का प्रयोग सम अथवा पहली मात्रा के लिए किया गया। इसके विभागों में मात्राओं का विभाजन भी ताल की संरचना के सामान्य नियमों के अनुसार नहीं है जिसमें संगीतज्ञों के बीच विवाद भी है।

धमार ताल को चार विभाग में विभक्त किया गया है जिसमें पहला विभाग पांच मात्रा का, दूसरा विभाग दो मात्रा का, तीसरा विभाग तीन मात्रा एवं चौथा विभाग चार मात्रा का है। यद्यपि सम मात्राओं की तालों में ताल की संरचना के नियमानुसार ताल के मध्य में खाली होती है एवं खाली से पहले एवं बाद के विभागों का स्वरूप समान होता है। परन्तु धमार ताल इस नियम का अपवाद है। धमार ताल का स्वरूप निम्न प्रकार से हैः–

मात्रा – चौदह, विभाग– 4(5+2+3+4), ताली – 1, 6 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ	क
×					2		0			3				×

1.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

लयकारी – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होने वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई है–विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम होने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता है एवं द्रुत लय का विश्रांति समय मध्य लय के विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी। अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड एवं बिआड प्रयोग की जाती हैं।

दुगुन –	एक मात्रा में दो मात्रा	1 2 1 2
तिगुन –	एक मात्रा में तीन मात्रा	1 2 3 1 2 3
चौगुन –	एक मात्रा में चार मात्रा	1234 1234

2.4.1 अडाचारताल की लयकारीयां :–

आडाचारताल का ठेका

धिं	तिरकिट	धिं	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धि	ना	धि	धि	ना	धिं
×		2		0		3		0		4		0		×

दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी को क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार प्रयोग किया जाता है।

आडाचारताल की दुगुन :–

धिंतिरकिट	धिंना	तूना	कता	तिरकिटधि	नधि	धिना	धिंतिरकिट
×		2		0		3	
धिंना	तूना	कता	तिरकिटधि	नधि	धिना	धिं	
0		4		0		×	

आडाचारताल की दुगुन एक आवर्तन में – 7 मात्रा की होगी एवं आठवीं मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी।

धिंतिरकिट	धिंना	तूना	कता	तिरकिटधिं	नाधिं	धिंना	धिं
	0		4		0		×

आडाचारताल की तिगुन :–

धिंतिरकिटधिं	नातूना	कतातिरकिट	धिंनाधिं	धिंनाधिं	तिरकिटधिंना	तूनाक	तातिरकिटधिं
×		2		0		3	
नाधिंधिं	नाधिंतिरकिट	धिंनातू	नाकता	तिरकिटधिंना	धिंधिंना	धिं	
0		4		0		×	

आडाचारताल की तिगुन एक आवर्तन में – $\frac{14}{3} = 4\frac{2}{3}$ मात्रा की होगी एवं $9\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होकर सम पर आएगी।

ऽधिंतिरकिट	धिनातू	नाकता	तिरकिटधिंना	धिंधिंना	धिं
	4		0		×

आडाचारताल की चौगुन :–

धिंतिरकिटधिंना	तूनाकता	तिरकिटधिंनाधिं	धिनाधिंतिरकिट	धिंनातूना	कतातिरकिटधि
×		2		0	
नाधिधिना	धिंतिरकिटधिंना	तूनाकता	तिरकिटधिंनाधिं	धिनाधिंतिरकिट	धिंनातूना
3		0		4	
कतातिरकिटधि	नाधिधिना	धिं			
0		×			

आडाचारताल की चौगुन एक आवर्तन में – $\frac{14}{3} = 4\frac{2}{4}$ मात्रा की होगी एवं $11\frac{2}{4}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

11	12	13	14	
ऽऽधिंतिरकिट	धिनातूना	कतातिरकिटधिं	नाधिंधिंना	धिं
4		0		×

2.4.2 झपताल की लयकारीयां :–

झपताल का ठेका

धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना	धी
×		2			0		3			×

झपताल की दुगुन :–

धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धी
×		2			0		3			×

झपताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धी
0		3			×

झपताल की तिगुन :–

धीनाधी	धीनाती	नाधीधी	नाधीना	धीधीना	तीनाधी	धीनाधी	नाधीधी	नातीना	धीधीना	धी
×		2			0		3			×

झपताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

12धी	नाधीधी	नातीना	धीधीना	धी
	3			×

झपताल की चौगुन :–

धीनाधीधी	नातीनाधी	धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना
×		2		

धीनाधीधी	नातीनाधी	धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना	धी
0		3			×

झपताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धीना	धीधीनाती	नाधीधीना	धी
3			×

2.4.3 एकताल की लयकारीयां :–

एकताल का ठेका

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धि	ना	धिं
X		0		2		0		3		4		×

एकताल में दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी एक आवृति की क्रमशः छः मात्रा, चार मात्रा एवं तीन मात्रा की होगी। अतः दुगुन सातवीं, नौवीं मात्रा एवं दसवीं मात्रा से आरम्भ हो कर सम पर आएगी। दुगुन, तिगुन व चौगुन एक आवृति में क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार प्रयोग करनी होगी।

एकताल की दुगुन :–

धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कता	धागेतिरकिट	धिना	
X		0		2		
धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कता	धागेतिरकिट	धिना	धिं
0		3		4		×

एकताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

7	8	9	10	11	12	
धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिना	धिं
0		3		4		×

एकताल की तिगुन :–

धिंधिंधागे तिरकिटतूना	कताधागे तिरकिटधिना	धिंधिंधागे तिरकिटतूना
x	0	2
कताधागे तिरकिटधिना	धिंधिंधागे तिरकिटतूना	कताधागे तिरकिटधिना धिं
0	3	4 ×

एकताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

9	10	11	12	
धिं धिं धागे	तिरकिट तूना	कत्ता धागे	तिरकिटधिना	धिं
3		4		×

एकताल की चौगुन :–

धिंधिंधागेतिरकिट तूनाकता	धागेतिरकिटधिना	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकता	धागेतिरकिटधिना
x	0		2	
धिंधिंधागेतिरकिट तूनाकता	धागेतिरकिटधिना	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकता	धागेतिरकिटधिना धिं
0	3		4	×

एकताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

10	11	12	
धिं धिं धागे तिरकिट	तूनाकत्ता	धागेतिरकिट धिना	धिं
	4		×

2.4.4 सूलताल की लयकारीयां :–

सूलताल का ठेका

धा धा	दिं ता	किट धा	तिट कता	गदि गन	धा
×	0	2	3	0	×

सूलताल की दुगुन :–

धाधा दिंता	किटधा तिटकता	गदिगन धाधा	दिंता किटधा	तिटकता गदिगन	धा
×	0	2	3	0	×

सूलताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धाधा	दिंता किटधा	तिटकता गदिगन	धा
	3	0	×

सूलताल की तिगुन :–

धाधादिं ताकिटधा	तिटकतागदि गनधाधा	दिंताकिट धातिटकता
×	0	2
गदिगनधा धादिंता	किटधातिट कतागदिगन	धा
3	0	×

सूलताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

12धा धादिंता	किटधातिट कतागदिगन	धा
3	0	×

सूलताल की चौगुन :–

धाधादिंता किटधातिटकता	गदिगनधाधा दिंताकिटधा	तिटकतागदिगन धाधादिंता
×	0	2
किटधातिटकता गदिगनधाधा	दिंताकिटधा तिटकतागदिगन	धा
3	0	×

सूलताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धाधा	दिंताकिटधा तिटकतागदिगन	धा
	0	×

2.4.5 धमार ताल की लयकारीयां :–

धमारताल का ठेका

क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ	क
×					2		0			3				×

दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी को क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार प्रयोग किया जाता है। इस ताल के ठेके में सातवीं मात्रा एवं चौदवीं मात्रा पर कोई पखावज का वर्ण अथावा बोल नहीं है अतः इसको 'ऽ' से दिखाया जाता है एवं यह पूर्ण मात्रा है।

धमार ताल की दुगुन :–

कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	क
×					2		0			3				×

धमार ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

8	9	10	11	12	13	14	
कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	क
0			3				×

धमार ताल की तिगुन :–

कधिट धिटधा ऽगति टतिट ताऽक	धिटधि टधाऽ	गतिट तिटता ऽकधि
×	2	0
टधिट धाऽग तिटति टताऽ	क	
3	×	

धमार ताल की तिगुन एक आवर्तन में :– 7 मात्रा की होगी एवं आठवीं मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी। $\frac{14}{3} = 4\frac{2}{3}$ मात्रा की होगी एवं $9\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होकर सम पर आएगी।

10	11	12	13	14	
1कधि	टधिट	धाऽग	तिटति	टताऽ	क
					×

धमार ताल की चौगुन :–

कधिटधि टधाऽग तिटतिट ताऽकधि टधिटधा	ऽगतिट तिटताऽ	कधिटधि टधाऽग तिटतिट
×	2	0
ताऽकधि टधिटधा ऽगतिट तिटताऽ	क	
3	×	

धमार ताल की चौगुन एक आवर्तन में :– $^{14}/_{4} = 3\frac{2}{4}$ मात्रा की होगी एवं $11\frac{2}{4}$ मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी।

11	12	13	14	
ऽऽकधि	टधिटधा	ऽगतिट	तिटताऽ	क
3				×

अभ्यास प्रश्न

क) निम्न के उत्तर हां अथवा नहीं में दीजिए :–

1. तीनताल एवं धमारताल में विभाग की संख्या समान होती है।
2. गजझम्पा पखावज पर बजाने वाली ताल है।
3. शिखर ताल में आठवीं मात्रा पर खाली है।
4. झूमरा ताल का प्रयोग बड़े ख्याल के लिए किया जाता है।
5. पंचमसवारी एवं गजझम्पा ताल की संरचना समान है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप पाठ्यक्रम की तालों को जान चुके होंगे। आप प्रत्येक ताल की ताल संरचना को भी समझ चुके होंगे। संगीत में विभिन्न गायन शैलियों के साथ निश्चित तालों का प्रयोग किया जाता है, अतः इसी आधार पर विभिन्न तालों की रचना की गई। समान मात्राओं की विभिन्न तालों का आधार भी यही है। इस इकाई में प्रत्येक ताल के संगीत में प्रयोग के विषय में आपने अध्ययन किया, अतः इस अध्ययन के पश्चात आप संगीत में तालों का प्रयोग भली–भांति कर पाएंगे। आप इन तालों के विभिन्न स्वरुपों को भी जान चुके होंगे।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) निम्न के उत्तर हां अथवा नहीं में दीजिए :–

1. हाँ 2. हाँ 3. नहीं 4. हाँ 5. नहीं

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, श्री गिरीश, *ताल परिचय भाग –3*, रूबी प्रकाशन मलाका, इलाहाबाद।
2. मिश्र, श्री विजय शंकर, *तबला पुराण*, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2. सेन, डॉ0 अरूण कुमार, *भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3. शर्मा, श्री भगवतशरण, *ताल प्रकाश*, संगीत कार्यालय हाथरस।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किन्हीं तीन तालों का पूर्ण परिचय दीजिए एवं उनकी दुगुन, तिगुन व चौगुन लयकारी भी लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 3 – तबले की रचनाओं(पाठ्यक्रमानुसार) को लिपिबद्ध करना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 पाठ्यक्रम की तालों में तबले की रचनाएं
3.3.1 आडाचारताल
3.3.2 झपताल
3.3.3 एकताल
3.3.4 सूलताल
3.3.5 धमार ताल
3.4 सारांश
3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0टी0–201) के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप आप दक्षिण भारतीय ताल पद्धति एवं उत्तर भारतीय ताल पद्धति को समझ चुके होंगे। संगीत में प्रयोग होने वाली प्रचलित तालों का पूर्ण परिचय भी आप प्राप्त कर चुके होंगे। आप तालों की संरचना एवं उनके उपयोग को भी समझ गए होंगे, जिससे आप इनका सफल प्रयोग क्रियात्मक रूप में कर पाएंगे।

इस इकाई में आप तबला वादन में प्रयोग होने वाली रचनाओं को लिपिबद्ध करने के विषय में अध्ययन करेंगे जिसके लिए इस इकाई में भातखण्डे तालिपि पद्धति का प्रयोग किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप तबले की किसी रचना को भी लिपिबद्ध कर भविष्य के सन्दर्भ हेतु सुरक्षित रख पाएंगे एवं इनको क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

1. तबले की रचनाओं को लिपिबद्ध कर पाएंगे।
2. तबले की उपलब्ध रचनाओं को पढ़ कर इनको क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर पाएंगे।
3. यह ही जान पाएंगे कि एक ही रचना को उसकी मात्राओं के अनुसार किस–किस ताल में बजाया या पढा जा सकता है।

3.3 पाठ्यक्रम की तालों में तबले की रचनाएं

3.3.1 आड़ाचारताल – आड़ाचारताल में रचनाएं लिपिबद्ध कर प्रस्तुत की जा रही हैं :–

ठेका

धिं	तिरकिट	धी	ना	तू	ना	क	त्ता	तिरकिट	धि	ना	धी	धी	ना	धिं
×		2		0		3		0		4		0		×

उठान

धाधिऽन	किऽकतातिर	किटतकतिरकिट	तकतिरकिटतक	तिरकिटधाती	धाऽधाती	धाऽधाती	
×		2		0		3	
धाऽतिरकिट	धातीधाऽ	धातीधाऽ	धातीधाऽ	तिरकिटधाती	धाऽधाती	धाऽधाती	धिं
	0		4		0		×

पेशकार मुख्य बोल

धिंऽधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता	
×		2		0		3	
तिऽतिंता	ऽतातिंता	तातीताती	तातातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंधा	
	0		4		0		

पलटा 1

ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता	
×		2		0		3	
ऽतातिंता	ऽतातिंता	तातीताती	तातातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंधा	
	0		4		0		

पलटा 2

ऽधाऽधा	ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धाधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता	
×		2		0		3	
ऽताऽता	ऽतातिंता	ऽतातिंता	तातातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	
	0		4		0		

पलटा 3

धिंताधाती	धाधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता	
म		2		0		3	
तिंतातीती	तातातिंता	तातीताती	तातातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	
	0		4		0		

तिहाई

धातीधाती	धाधाधिंता	धिंताधाती	धाधातिंता	धा	धातीधाती	धाधाधिंता	
×		2		0		3	
धिंताधाती	धाधाधिंता	धा	धातीधाती	धाधाधिंता	धिंताधाती	धाधातिंता	धिं
	0		4		0		×

कायदा – चतुरश्र जाति

धातिरकिटधि	तिटधिन		धातीगिन		धातिरकिटधि	तिटधिन		धातीगिन	तिनाकिन
×			2			0			3
तातिरकिटति	तिटधिन		तातीकिन		धातिरकिटधि	तिटधिन		धातीगिन	धिनागिन
	0				4			0	

दुगुन

धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन	तिनाकिनतातिरकिटति
×		2	
तिटकिनतातीकिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीधिनधिनागिन	धातिरकिटधितिटधिन
0		3	
धातीगिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन	तिनाकिनतातिरकिटति	तिटकिनतातीकिन
0		4	
धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधिनागिन		
0			

पलटा 1

धातीधिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन	धातिरकिटधितिटतिधन	धातीगिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन
×		2		0
धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनतिनाकिन	तातीकिनतातिरकितति	तिटकिनतातीकिन	तातिरकिटतितिटकिन
	3		0	
तातीकिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधिनागिन	
4		0		

पलटा 2

तिटधिनधातीगिन	तिटधिनधातीगिन	तिटधिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन
×		2		0
धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनतिनाकिन	तिटकिनतातीकिन	तिटकिनतातीकिन	तिटधिनधातिरकिटधि
	3		0	
तिटधिनधातिरकिटधि	तिरधिनधातीगिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधिनागिन	
4		0		

पलटा 3

तिटधिनतिटधिन	धातीगिनधातिरकिटधि	तिटधिनतिटधिन	धातीगिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन
×		2		0
धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनतिनाकिन	तिटकिनतिटकिन	तातिकिनतातिरकिटति	तिटकिनतिरकिन
	3		0	
धातीगिनधातिरकिटधि	तिटधिनधातीगिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधिनागिन	
4		0		

तिहाई

धातीगिनधिनागिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीधिनधिनागिन	धाऽधाऽ	धाऽ
×		2		0
धातीगिनधिनागिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधिनागिन	धाऽधाऽ	धाऽ
	3		0	
धातीगिनधिनागिन	धातिरकिटधितिटधिन	धातीगिनधिनागिन	धाऽधाऽ	धिं
4		0		×

कायदा – तिस्र जाति

धिऽन,	धगेन,	धाऽऽ,	धातिरकिट,
×		2	
धितिट,	धिनति,	नाकिन,	तिऽन,
0		3	
तकेन,	ताऽऽ,	धातिरकिट,	धितिट,
0		4	
धिनधि,	नागिन,		
0			

दुगुन

धिऽनधगेन	धाऽऽधातिरकिट	धितिटधिनति	नाकिनतिऽन
×		2	
तकेनताऽऽ	धातिरकिटधितिट	गिनधिनागिन	धिऽनधगेन
0		3	
धाऽऽधातिरकिट	धितिटधिनति	नाकिनतिऽन	तकेनताऽऽ
0		4	
धातिरकिटधितिट	गिनधिनागिन		
0			

पलटा 1

धगेनधिऽन,	धगेनधाऽऽ	धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट,
×		2	
धातिरकिटधगेन,	धातिरकिटधितिट,	धिनतिनाकिन,	तकेनतिऽन,
0		3	
तकेनताऽऽ,	तातिरकिटतकेन	तातिरकिटतितिट,	धतिरकिटधगेन,
0		4	
धातिरकिटधितिट,	धिनधिनागिन,		
0			

पलटा 2

धातिरकिटधगेन,	धिऽनधगेन,	धाऽऽधगेन,	धातिरकिटधितिट,
×		2	
धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनतिनाकिन,	तातिरकिटतकेन,
0		3	
तिऽनतकेन	ताऽऽतकेन,	तातिरकिटतितिट,	धातिरकिटधगेन
0		4	
धातिरकिटधितिट	धिनधिनागिन		
0			

पलटा 3

धातिरकिटधितिट,	धातिरकिटधगेन,	धिऽनधगेन,	धाऽऽधगेन,
×		2	
धातिरकिटधगेन,	धातिरकिटधितिट	धिनतिनाकिन,	तातिरकिटतितिट,
0		3	

तातिरकिटतकेन्	तिऽनधगेन्	ताऽऽतकेन्	धातिरकिटधगेन्
0		**4**	
धातिरकिटधितिट्	धिनधिनागिन्		
0			

तिहाई

धातिरकिटधितिट्	धातिरकिटधगेन्	धातिरकिटधितिट्	धिनतिनाकेन्
×		**2**	
धा	धातिरकिटधितिट्	धातिरकिटधगेन्	धातिरकिटधितिट्
0		**3**	
धिनातिनाकिन्	धा	धातिरकिटधितिट्	धातिरकिटधगेन्
0		**4**	
धातिरकिटधितिट्	धिनातिनाकिन्	धिं	
0		×	

रेला

धातिर्	किटतक्	तिरकिट्	धातिर्
×		**2**	
किटतक्	तातिर्	किटतक्	तातिर्
0		3	
किटतक्	तिरकिट्	धातिर्	किटतक्
0		**4**	
धातिर्	किटतक्		
0			

दुगुन

धातिरकिटतक्	तिरकिटधातिर्	किटतकतातिर्	किटतकतातिर्
×		**2**	
किटतकतिरकिट्	धातिरकिटतक्	धातिरकिटतक्	धातिरकिटतक्
0		3	
तिरकिटधातिर्	किटतकतातिर्	किटतकतातिर्	किटतकतिरकिट्
0		**4**	
धातिरकिटतक्	धातिरकिटतक्		
0			

पलटा 1

धातिरकिटतक्	तिरकिटधाऽ	धातिरकिटतक्	तिरकिटधातिर्
×		**2**	
किटतकतिरकिट्	धातिरकिटतक्	तातिरकिटतक्	तातिरकिटतक्
0		0	
तिरकिटताऽ	तातिरकिटतक्	तिरकिटतातिर्	किटतकतिरकिट्
0		**4**	
धातिरकिटतक्	धातिरकिटतक्		
0			

पलटा 2

धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक
×		2	
तिरकिटधाऽ	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	तातिरकिटतक
0		3	
तिरकिटतातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तिरकिटधाऽ
0		4	
धातिरकिटतक	धातिरकिटतक		
0			

पलटा 3

तिकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर
×		2	
किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	तिरकिटतातिर
0		3	
किटतकतिरकिट	तातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट
0		4	
धातिरकिटतक	धातिरकिटतक		
0			

तिहाई

तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तिरकिटधाती
×		2	
धा	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक
0		3	
तिरकिटधाती	धा	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट
0		4	
धातिरकिटतक	तिरकिटधाती	धिं	
0		×	

गत

धाऽन	धितिट	तकिट	धितिट	
×		2		
धातिरकिट	धितिट	कताग	दीकिन	
0		3		
दींऽदीं	ऽदींऽ	नगन	गनग	
0		4		
तकट	तकट	धाऽक	धातिट	
0		×		
धाऽन	धाऽन	धा	धाऽक	
2		0		
धातिट	धाऽन	धाऽन	धा	
3		0		
धाऽक	धातिट	धाऽन	धाऽन	धिं
4		0		×

परन

धिटधिट,	धागेतिट,	कऽधातिट,	धागेतिट,	
×		2		
कऽधातिट्ट	कऽधातिट,	कऽधातिट,	धागेतिट,	
0		3		
गदीगन,	नागेतिट,	धागेतिट ,	ताकेतिट,	
0		4		
कतिटता	ऽनताके ,	तिटकता ,	गदीगिन,	
0		×		
धित्ततगे ,	ऽनाधित्त,	तगेऽन,	धित्ताऽ,	
2		0		
तिरकिटधित्त,	तगेऽन,	धा,	तिरकिटधित्त,	
3		0		
तगेऽन,	धा,	तिरकिटधित्त,	तगेऽन,	धिं
4		0		×

चक्करदार सादा

घेतिरकिटतक,	ता,	घेतिरकिटतक,	ताऽकता ,	
×		2		
गऽदींऽ,	कतधाऽ ,	कतिं	टता,	
0		3		
धातिरकिटतक,	ताऽकता,	धाऽकता,	धाघेतिर,	
0		4		
किटतकताऽ,	कताधाऽ,	कताधाऽ ,	घेतिरकिटतक,	
0		×		
ताऽकता,	धाऽकता,	धा,		× 3
2		0		

उक्त बोल उन्नीस मात्रा का है अतः 3 बार बजाने पर चार आवृति के बाद सम पर आएगा।

चक्करदार फरमाइशी

घेतिरकिटतक,	ताकटधा,	घेतिरकिटतक,	तकिटधा,	
×		2		
घेतिरकिटतक,	ताकिटधा	ऽतकिट ,	धाऽकिट ,	
0		3		
धाऽकता,	गऽदींऽ ,	कताधाऽ ,	घेतिरकिटतक,	
0		4		
तातिरकिटतक,	ताकडान,	धा,	ऽ ,	
0		म		
तातिरकिटतक,	ताकडान,	धा,	ऽ ,	
2		0		
तातिरकिटतक,	ताकडान,	धा,	ऽ ,	× 3
3		0		

3.3.2 झपताल – झपताल में उठान, पेशकार, दो कायदे, रेला, टुक्ड़ा, परन, चक्करदार(सादा), चक्करदार (फरमाइशी) एवं गत लिपिबद्ध कर प्रस्तुत की जा रही हैं।

उठान

धागेतिना	किडनकतातिर	किटतकतिरकिट	तकतिरकिटतक	तिरकिटधाती	
×		2			
धाधा	धाऽधाती	धाधा	धाऽधाती	धाधा	धी
0		3			×

पेशकार

धिंऽधिता	ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता
×		2		
तिंऽतिंता	ऽतातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता
0		3		

पल्टा – 1

ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धातिता
×		2		
ऽतातिंता	ऽतातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता
0		3		

पल्टा – 2

धिंताऽधा	ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता
×		2		
तिंताऽता	ऽतातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता
0		3		

पल्टा – 3

धिंताधाती	धाधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधातिंता
×		2		
तिंताताती	तातातिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता
0		3		

तिहाई

धातीधाती	धाधाधिंता	धाऽधाऽ	धाऽधाती	धातीधाधा	
×		2			
धिंताधाऽ	धाऽधाऽ	धातीधाती	धाधाधिंता	धाऽधाऽ	धी
0		3			×

कायदा 1 – चतुरश्र जाति

धागेतिट	धिनधागे	नधातिट	धिनधागे		तिनाकिन
×		2			
ताकेतिट	किनताके	नधातिट	धिनधागे		धिनागिन
0		3			

कायदे की दुगुन

धागेतिटधिनधागे	नधातिटधिनधागे	तिनाकिनताकेतिट	किनताकेनधातिट	धिनधागेधिनागिन
×		2		
धागेतिटधिनधागे	नधातिटधिनधागे	तिनाकिनताकेतिट	किनताकेनधातिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		

पल्टा – 1

धागेनधातिटधिन	धागेतिटधिनधागे	नाधातिटधिनधागे	तिटधिननधातिट	धिनधागेतिनाकिन
×		2		
ताकेनतातिटकिन	ताकेतिटकिनताके	नधतिटधिनधागे	तिटधिननधातिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		

पल्टा – 2

नधातिटधिननधा	तिटधिनधागेनधा	तिटधिनधागेतिट	धिनधागेनधातिट	धिनधागेतिनाकिन
×		2		
ततातिटकिननता	तिटकिनताकेनता	तिनधिनधागेतिट	धिनधागेनधातिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		

पल्टा – 3

तिटधिननधातिट	धिननधातिटधिन	तिटधिनधागेतिट	धिनधागेनधातिट	धिनधागेतिनाकिन
×		2		
तिटकिननतातिट	किननतातिटकिन	तिटधिनधागेतिट	धिनधागेनधातिट	धिनधागेतिनाकिन
0		3		

तिहाई

धिनधागेधिनागिन	धिनधागेधिनागिन	धाऽधाऽ	धाऽधिनधागे	धिनागिनधिनधागे	
×		2			
धिनागिनधाऽधाऽ	धाऽधिनधागे	धिनगिनाधिनधागे	धिनागिनधाऽ	धाऽधाऽ	धी
0		3			×

कायदा 2 – तिस्त्र जाति

धिऽन	धगेन	धाऽऽ	धगेन	धातिरकिट
×		2		
धागेन	धातिरकिट	धितिट	धिनति	नाकिन
0		3		
तिऽन	तकेन	ताऽऽ	तकेन	धातिरकिट
×		2		
धागेन	धातिरकिट	धितिट	धिनाधि	नागिन
0		3		

कायदे की दुगुन

धिऽनधगेन	धाऽऽधगेन	धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनातिनाकिन
×		2		
तिऽनतकेन	ताऽऽतकेन	धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनाधेनागिन
0		3		

पल्टा – 1

धागेनधिऽन	धगेनधाऽऽ	धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनातिनाकिन
×		2		
तकेनतिऽन	तकेनताऽऽ	धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनधिनागिन
0		3		

पल्टा – 2

धातिरकिटधगेन	धाऽऽधगेन	धिऽनधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनातिनाकिन
×		2		
तातिरकिटतकेन	ताऽऽतकेन	धिऽनधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनाधिनागिन
0		3		

पल्टा – 3

धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धातिटकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनातिनाकेन
×		2		
तातिरकिटतकेन	तातिरकिटतितिट	धातिरकिटधगेन	धातिरकिटधितिट	धिनाधिनागिन
0		3		

तिहाई

धातिरकिटधितिट	धिनतिनाकिन	धा	ऽ	धातिरकिटधितिट	
×		2			
धिनतिनाकिन	धा	ऽ	धातिरकिटधितिट	धिनतिनाकिन	धी
0		3			×

रेला

धाऽधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		2		
ताऽतातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक
0		3		

पल्टा – 1

धातिरकिटतक	तिरकिटधाऽ	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		2		
तातिरकिटतक	तिरकिटताऽ	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक
0		3		

पल्टा – 2

तिरकिटधाऽ	धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	तातिरकिटतक
×		2		
तिरकिटताऽ	तातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धतिरकिटतक
0		3		

पल्टा – 3

धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		2		
तातिरकिटतक	तिरकिटतातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक
0		3		

तिहाई

धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धाऽधातिर	किटतकतिरकिट	
×		2			
धातिरकिटतक	तिरकिटधाऽ	धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धी
0		3			×

परन

धिटधिट	धागेतिट	कऽधातिट	धागेतिट	कऽधातिट	
×		2			
कऽधातिट	कऽधातिट	धागेतिट	गदीगिन	नागेतिट	
0		3			
धागेतिट	ताकेतिट	कतिटत	किनताके	तिटकता	
×		2			
गदिगिन	धागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	ताकेतिट	
0		3			
धित्ततगे	ऽनधित्त	तगेऽन	धित्ततऽ	तिरकिटधित्त	
×		2			
तगेऽन	धा	धित्ततगे	ऽनधित्त	तगेऽन	
0		3			
धित्ततऽ	तिरकिटधित्त	तगेऽन	धा	धित्ततगे	
×		2			
ऽनधित्त	तगेऽन	धित्ततऽ	तिरकिटधित्त	तगेऽन	धी
0		3			×

टुकडा

घेतिरकिटतक	ता	घेतिरकिटतक	ताऽकता	गऽदींऽ	
×		2			
कतधाऽ	घेतिरकिटतक	ताऽकता	धाऽकता	धाऽकता	
0		3			
धा	घेतिरकिटतक	ताऽकता	धाऽकता	धाऽकता	
×		2			
धा	घेतिरकिटतक	ताऽकता	धाऽकता	धाऽकता	धी
0		3			×

चक्करदार (सादा)

कऽतिट	घेघेतिट	कऽधातिट	धागेतिट	कऽधातिट	
×		2			
कऽताऽ	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताक्ड़ान	धाऽघेतिट	
0		3			
किटतकतातिर	किटतकता	कड़ानधा	घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	
×		2			
ताकड़ान	धा	कऽतिट	घेघेतिट	कऽधातिट	
0		3			

धागेतिट	कऽधातिट	कऽताऽ	घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		2		
ताक्ड़ान	धाऽघेतिट	किटतकतातिर	किटतकता	कड़ानधा
0		3		
घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकड़ान	धा	कऽतिट
×		2		
घेघेतिट	कऽधातिट	धागेतिट	कऽधातिट	कऽताऽ
0		3		

घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकड़ान	धाऽघेतिर	किटतकतातिर	
×		2			
किटतकता	कड़ानधा	घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकड़ान	धी
0		3			×

चक्करदार (फरमाइशी)

धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक
×		2		
तकटधा	धिरधिरकिटतक	तातिरकिटतक	कतधिरधिर	किटतकतकट
0		3		
धा	कतधिरधिर	किटतकतकट	धा	कतधिरधिर
×		2		
किटतकतकट	धा	धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक
0		3		
तकटधा	धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		2		
कतधिरधिर	किटतकतकट	धा	कतधिरधिर	किटतकतकट
0		3		
धा	कतधिरधिर	किटतकतकट	धा	धिरधिरकिटतक
×		2		
तकटधा	धिरधिरकिटतक	तकटधा	धिरधिरकिटतक	तकटधा
0		3		
धिरधिरकिटतक	तातिरकिटतक	कतधिरधिर	किटतकतकट	धा
×		2		
कतधिरधिर	किटतकतकट	धा	कतधिधिर	किटतकतकट	धी
0		3			×

गत

धाऽननाऽन	तकटतकट	धात्रकधितिट	धेऽतराऽन	कतिटकतऽ
×		2		
धेऽतराऽन	धात्रकधितिट	कतागदिगिन	नगनगनग	तकटतकट
0		3		
धात्रकधितिट	धेऽतराऽन	कतिटकतऽ	धेऽतराऽन	धात्रकधितिट
×		2		
कतागदिगिन	धा	कतागदिगिन	धा	कतागदिगिन	धी
0		3			×

3.3.3 एकताल – एकताल में एक उठान, एक पेशकार, दो कायदे, एक रेला, परन, गत, चक्कदार एवं टुकड़ा रचनाएं लिपिबद्ध कर प्रस्तुत की जा रही है।

उठान

धागेतिना	किऽनकतातिर	किटतकतिरकिट	तकतिरकिटतक	तिरकिटधाती	धाऽधाती	
×		0		2		
धा	तिरकिटधाती	धाऽधाती	धा	तिरकिटधाती	धाऽधाती	धिं
0		3		4		×

पेशकार

धिंऽधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	धाऽकधाती	धाधातिंता
×		0		2	
तिंऽतिंता	ऽतातिंता	तातीताती	तातातिंता	धाऽकधाती	धाधाधिंता
0		3		4	

पलटा 1

ऽधाधिंता	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	धाऽकधाती	धाधातिंता
×		0		2	
ऽतातिंता	ऽतातिंता	तातीताती	तातातिंता	धाऽकधाती	धाधाधिंता
0		3		4	

पलटा 2

ऽधाऽधा	ऽधाधिंता	धातीधाती	धाधाधिंता	धाऽकधाती	धाधातिंता
×		0		2	
ऽताऽता	ऽतातिंता	तातीताती	तातातिंता	धाऽकधाती	धाधाधिंता
0		3		4	

पलटा 3

धिंताधाती	धाधाधिंता	ऽधाधिंता	धाधाधिंता	धाऽकधाती	धाधातिंता
×		0		2	
तिंताताती	तातातिंता	ऽतातिंता	तातातिंता	धाऽकधाती	धाधाधिंता
0		3		4	

तिहाई

धातीधाधा	धिताधाती	धाधाधिंता	धा1	2धाती	धाधाधिंता	
×		0		2		
धातीधाधा	धिताधा	1 2	धातीधाधा	धिंताधाती	धाधाधिंता	धिं
0		3		4		×

कायदा चतुरश्र जाति

धागेनधा	तिटधिन	धागेधिना	धिनातिट	धिनधागे	तिनाकिन
×		0		2	
ताकेनता	तिटकिन	ताकेतिना	किनतिट	धिनधागे	धिनागिन
0		3		4	

दुगुन

धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेतिनाकिन	ताकेनतातिटकिन	ताकेतिनाकिनतिट	धिनधागेधिनागिन
×		0		2	
धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेतिनाकिन	ताकेनतातिटकिन	ताकेतिनाकिनतिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		4	

पलटा 1

धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधागेनधा	तिटधिनधागेधिना	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेतिनाकिन
×		0		2	
ताकेनतातिटकिन	ताकेतिनाताकेनता	तिटधिनधागेधिना	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		4	

पलटा 2

तिटधिनधागेधिना	धिननितिटधागेधिना	धिननितिटधागेधिना	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेतिनाकिन
×		0		2	
तिटकिनताकेतिना	किनातिटताकेतिना	किननितिटधागेधिना	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		4	

पलटा 3

तिटधिननितिटधिन	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेतिनाकिन
×		0		2	
तिटकिननितिटकिन	ताकेनतातिटकिन	धागेधिनाधिनतिट	धागेनधातिटधिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		4	

तिहाई

धिनधागेधिनागिन	धागेधिनधिनतिट	धिनधागेधिनागिन	धा 1	2धिनधागे	धिनागिनधागेधिना
×		0		2	
धिननितिटधिनधागे	धिनागिनधा	1 2	धिनधागेधिनागिन	धागेधिनाधिनतिट	धिनधागेधिनागिन
0		3		4	

रेला

धा	तातिर	किटतक	तिरकिट	धातिर	किटतक
×		0		2	
ता	तातिर	किटतक	तिरकिट	धातिर	किटतक
0		3		4	

दुगुन

धाधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तातातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक
×		0		2	
धाधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तातातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक
0		3		4	

पलटा 1

धाधातिर	किटतकतिरकिट	धाधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		0		2	
तातातिर	किटतकतिरकिट	धाधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक
0		3		4	

पलटा 2

धातिरकिटतक	तिरकिटधा	धातिरकिटतक	तिरकिटधा	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		0		2	
तातिरकिटतक	तिरकिटता	धातिरकिटतक	तिरकिटधा	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक
0		3		4	

पलटा 3

तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तिरकिटधा	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक
×		0		2	
तिरकिटतातिर	किटतकतिरकिट	धातिरकिटतक	तिरकिटधा	धातिरकिटतक	धातिरकिटतक
0		3		4	

तिहाई

तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धा	धा1	2तिरकिट	धातिरकिटतक
×		0		2	
तिरकिटधा	धा	1 2	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धा
0		3		4	

गत

धाऽन	धिकिट	तकिट	धिकिट	धातिरकिट	धितिट
×		0		2	
कताग	दिकिन	दिंऽदी	ऽदीऽ	नगन	गनग
0		3		4	
तकिट	तकिट	धाऽक	धातिट	धाऽन	धाऽन
×		0		2	
धा	धाऽन	धाऽन	धा	धाऽन	धाऽन
0		3		4	

परन

धिटधिट	धागेतिट	कऽधातिट	धागेतिट	कऽधातिट	कऽधातिट
×		0		2	
कऽधातिट	धागेतिट	गदीगिन	नागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट
0		3		4	
कतिटत	किनताके	तिटकता	गदीगिन	धागेतिट	ताकेतिट
×		0		2	
धागेतिट	ताकेतिट	धित्तगे	ऽनधित्त	तगेऽन	धित्तधिन
0		3		4	
धा	तिरकिट	धित्ततगे	ऽनधित्त	तगेऽन	धित्तधित्त
×		0		2	
धा	तिरकिट	धित्ततगे	ऽनधित्त	तगेऽन	धित्तधित्त
0		3		4	

चक्करदार सादा

दींदीं	तिटतिट	धागेतिट	ताकेतिट	कऽधातिट	कता
×		0		2	
घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	ताकडाऽन	धाऽतातिर	किटतकता	कडाऽनधाऽ
0		3		4	
तातिरकिटतक	ताकडाऽन	धा	1	2	× 3(तीन बार)
×		0		2	

उपर दिया गया बोल तीन बार बजाया जाएगा एवं तीसरे चक्कर के बोल का तिहाई का धा सम पर आएगा। अन्तिम चक्कर में तिहाई के बाद दो मात्रा का विश्राम नहीं दिया जाएगा।

चक्करदार फरमाइशी

धागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	ताकेतिट	कऽधातिट	ताकेतिट
×		0		2	
गदीगिन	नागेतिट	कतिटत	किनताके	तिटकता	गदीगिन
0		3		4	
धा	तिटकता	गदीगिन	धा	तिटकता	गदीगिन
×		0		2	
धा	1	2	× 3		
0		3			

उपर दिया गया बोल तीन बार बजाकर सम पर आएगा जिसमें तिहाई का पहला धा पहली बार सम पर, दूसरे चक्कर का तिहाई का दूसरा धा दूसरी बार सम पर एवं अन्तिम चक्कर का तिहाई का अन्तिम धा सम पर आकर चक्करदार(फरमाइशी) पूर्ण होगी।

3.3.4 सूलताल ताल – यह ताल पखावज पर बजाई जाती है। इसे सूलफाक्ता ताल भी कहते हैं। इसमें तिहाई, टुकड़ा, परन, चक्करदार–सादा लिपिबद्ध कर प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

ठेका

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कता	गदि	गन	धा
×		0		2		3		0		×

तिहाई – दमदार

तिटकता	गदीगिन	धा	ऽ	तिटकता	गदीगिन	धा	ऽ	तिटकता	गदीगिन	धा
×		0		2		3		0		×

तिहाई – बेदम

तिटकता	गदीगिन	धाधा	धातिट	कतागदी	गिनधा	धाधा	तिटकता	गदीगिन	धाधा	धा
×		0		2		3		0		×

टुकड़ा

धागेतिट	धागेतिट	ताकेतिट	ताकेतिट	कऽधातिट	
×		0		2	
धागेतिट	गदीगिन	नागेतिट	कतिटत	किनताके	
	3		0		
तिटकता	गदीगिन	धाधा	धातिट	कतागदी	
×		0		2	
गिनधा	धाधा	तिटकता	गदीगिन	धाधा	धा
	3		0		×

परन

धिटधिट	धागेतिट	कऽधातिट	धागेतिट	कऽधातिट	
×		0		2	
कऽधातिट	कऽधातिट	धागेतिट	गदीगिन	नागेतिट	
	3		0		

कतिटत	किनताके	तिटकता	गदीगिन	धागेतिट	
×		0		2	
धागेतिट	ताकेतिट	ताकेतिट	धित्ततगे	ऽनधित्त	
	3		0		
तगेऽन	धिता	तिरकिटधित्त	तगेऽन	धा	
×		0		2	
तिरकिटधित्त	तगेऽन	धा	तिरकिटधित्त	तगेऽन	धा
	3		0		×

चक्करदार सादा

धातिटधा	तिटधाधा	तिटकऽधा	तिटधाधा	तिटकऽधा	
×		0		2	
तिटधाधा	तिटकऽधा	तिट	धागेऽत	किटधागे	
	3		0		
तिटकता	गदीगिन	धा	गदीगिन	धा	
×		0		2	
गदीगिन	धा	धातिटधा	तिटधाधा	तिटकऽधा	
	3		0		
तिटधाधा	तिटकऽधा	तिटधाधा	तिटकऽधा	तिट	
×		0		2	
धागेऽत	किटधागे	तिटकता	गदीगन	धा	
	3		0		
गदीगिन	धा	गदीगिन	धा	धातिटधा	
×		0		2	
तिटधाधा	तिटकऽधा	तिटधाधा	तिटकऽधा	तिटधाधा	
	3		0		
तिटकऽधा	तिट	धागेऽत	किटधागे	तिटकता	
×		0		2	
गदीगिन	धा	गदीगिन	धा	गदीगिन	धा
	3		0		×

3.3.5 धमार ताल – इसमें आडाचारताल की रचनाएं बजाई जा सकती हैं।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. किसी भी ताल में फरमाइशी चक्करदार टुकडा कितनी आवृति का होता है?
2. एकताल का सादा चक्करदार टुकडा किस अन्य ताल में बिना परिवर्तन के बजाया जा सकता है?
3. आडाचारताल में दिया गया सादा चक्करदार टुकडा का एक चक्कर कितनी मात्रा का है एवं अन्य किस ताल में बजाया जा सकता है?

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप पाठ्यक्रम की तालों में तबले की रचनाओं को लिपिबद्ध करना सीख गए होंगे एवं इन रचनाओं को आप क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे। आप जान चुके होंगे कि किसी रचना को लिपिबद्ध करते समय किन–किन बातों(जैसे ताली, खाली, विभाग आदि) का ध्यान रखना आवश्यक है। किसी लिपिबद्ध रचना की पढन्त कैसे की जाती है तथा उसकी मात्राओं के

अनुसार उसे किस–किस ताल में बजाया या पढ़ा जा सकता है, ये भी आप जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप स्वयं किसी ताल की रचना को अन्य ताल में प्रयुक्त करना भी जान गए होंगे, जो आपको सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक दोनों स्वरूपों में सहायक सिद्ध होगा।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. फरमाइशी चक्करदार टुकडा पांच आवृति का होता है।
2. यह चक्करदार टुकडा 48 मात्रा का है अतः तीनताल में बिना परिर्वतन के बजाया जा सकता है।
3. आडाचारताल का चक्करदार टुकडा का एक चक्कर 18 मात्रा का है अतः नौ मात्रा की ताल में बिना बदले बजाया जा सकता है।

3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल प्रभाकर प्रश्नोत्तरी,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. मिश्र, श्री विजय शंकर, *तबला पुराण,* कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. मिश्र, पं0 छोटे लाल, *तबला ग्रन्थ,* कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किसी एक ताल में 1 उठान, 1 पेशकार (2 पल्टों व तिहाई सहित), 1 कायदा (2 पल्टों व तिहाई सहित), 1 रेला (2 पल्टों व तिहाई सहित), 1 गत, 1 परन, 1 टुक्डा एवं 1 चक्कादार को लिपिबद्ध कीजिए।